मङ्गलमोद

लेखक

अन्नपूर्णानन्द

रचना निकेत

काशी

प्रथम बार २०००]   १९९१   [मूल्य १।)

प्रकाशक

नारायणदास

मंत्री—रचना निकेत, काशी

चित्रकार

केदारनाथ शर्मा

मुद्रक

माधव विष्णु पराड़कर,

ज्ञानमण्डल यन्त्रालय, काशी । १९९१

श्री शिवप्रसाद गुप्त

आज मैं पहली बार आपसे एक अनुचित लाभ उठा रहा हूँ—अपनी यह पुस्तक आपको समर्पित करके अपनेको गौरवान्वित कर रहा हूं। आपके नामके संसर्गसे यह यदि अमर भी हो जाय तो मुझे आश्चर्य न होगा।

संसारमें सब प्रकारके लोग हैं। कुछ लोगोंको सम्भव है मेरी यह पुस्तक भी पसन्द आये। जिन्हें इस पुस्तकमें कुछ भी प्रसन्नता प्राप्त हो उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे एक बार ईश्वरसे आपके पूर्ण स्वास्थ्य-लाभकी कामना करें। बस इतनेसे मैं अपनेको कृतार्थ समझूँगा।

अन्नपूर्णानन्द

गत कई वर्षोंसे मैं नया प्रायः कुछ नहीं लिख सका हूँ। अवकाश और अनुकूल परिस्थिति दोनोंका अभाव रहा। जो कुछ भला बुरा आपके सामने इस समय है या आ चुका है वह अधिकांशतः बहुत पूर्वकी कमाई है।

इस संग्रहमें 'महावीरकी माया' शीर्षक कहानीका कथानक मेरे मित्र श्री भगवान्दास (भदैनी, काशी) के दिमागकी उपज है। 'दावतकी अदावत' और 'लोहारकी एक' मैंने सच्ची घटनाओंके रूपमें किसीसे सुनी थीं।

जालिपादेवी, काशी
२९ ज्येष्ठ १९९१

अन्नपूर्णानन्द

सूची

मङ्गल मोद

१

उल्लू की उड़ान

लोगोंका ऐसा ख़याल था—और अब भी है—कि प्रतिभा नामकी चीज़ मेरे बाँटे कभी पड़ी ही नहीं; पर मैं इसे माननेके लिये तैयार नहीं हूँ। ऐसा सोचना भी मेरे-ऐसे व्यक्तिके प्रति घोर अन्याय करना है जिसने सातवीं कक्षामें 'पेट' पर निबन्ध लिख लानेकी आज्ञा पाकर यह दोहा लिखा हो—

निंत रितवत नितके भरत
जिमि सुअना कंडाल।
इति न होत अति अजब गति
पेट गजब चंडाल॥

हाँ, इतना मैं स्वयं कहूँगा कि मेरी प्रतिभा सर्वतो-मुखी नहीं थी। गणितकी ओरसे वह रूठी हुई दुलहिन-सी मुँह फेर लेती।

ख़ैर, गणितकी कृपासे दो साल लगातार फेल होकर तीसरे साल मैं फिर इन्ट्रेन्सकी परीक्षा देने बैठा। गणितके ज्ञानसे अब भी बिलकुल कोरा था; पर परीक्षा देने चला गया। एक आदत-सी पड़ गयी थी, जो परीक्षा-भवनतक मुझे खींच ले गयी।

गणितका पर्चा मेरे सामने रख दिया गया। पर्चा पढ़नेके पहले मैंने त्रिकुटीमें ध्यान लगाकर ईश्वरसे प्रार्थना की कि—'हे प्रभो! आनन्ददाता ज्ञान मुझको दीजिये'—कि मैं दो-एक सवाल तो ठीक कर सकूँ, और नहीं तो—'शीघ्र सारे गार्डोंको दूर मुझसे कीजिये'—कि मैं आसानी से नक़ल ही कर सकूँ।

इसके बाद मैं पर्चेको एक बार पढ़ गया। पढ़ते ही ऐसी इच्छा हुई कि अपना सर खुजलाऊँ। फिर मैंने सोचा कि पर्चेको दुबारा पढ़ लूँ, तब निश्चिन्त होकर सर खुज-लाना शुरू करूँ। मैंने यही किया, दुबारा पढ़ गया। दुबारा पढ़ डालना महज़ एक रस्मकी बात थी; अगर सौ बार भी

पढ़ता तो इसी नतीजेपर पहुँचता कि इस कम्बख्त पर्चेका एक सवाल भी मेरे लिये नहीं बनाया गया है।

मैंने क़लमको कानपर चढ़ा लिया और हाथ-पर-हाथ रखकर बैठ रहा। मनमें उस परमात्माका गुणगान करने लगा जिसने गणित, गोजर और गण्डमाला ऐसी चीजें संसारको दीं। निराशा और निस्सहायताके भाव मेरे मन मुकुरको धूमिल करने लगे।

और परीक्षार्थियोंकी क़लमोंने घुड़दौड़-सी मचा रक्खी थी; पर मेरी क़लम अभी तक टस-से-मस भी न हुई। कान परसे उतार कर मैं उसे कापीके सामने ले आया; पर उसने आगे बढ़नेसे क़तई इनकार कर दिया। मैं हिम्मत न हारा और क़लम सम्हाले बैठा ही रहा। मुझे इस तरह बैठा देखकर एक गार्डने कहा—'क्यों व्यर्थ कापीको क़लमसे धमका रहे हो ?'

मैं चुप रहा। कहाँ तो मेरे गलेमें फाँसी पड़ी है और कहाँ इन्हें हाँसी सूझ रही है! अपना वक्त सब कुछ कराता है। न मैं ऐसा होता, न ये मेरे ऊपर अपनी जबान माँजते।

मैं कभी परचेकी ओर देखता था, कभी कापीकी ओर, और कभी क़लमकी ओर; पर तीनों ढाकके तीन पातकी तरह अलग ही नजर आते। इन तीनोंका अस्तित्व एक दूसरेका विरोधी जान पड़ता था। मैंने कापीसे कई बार अपनी लेखनीका साक्षात कराया; पर कुछ काम न निकला।

मैंने 'देवता, पित्तर, भुइयां, भवानी' सबको मनाया पर किसीने स्थितिको सुलझानेकी कोशिश न की। मैंने आध घण्टेके अन्दर क़लममें चार नयी निबें लगायीं कि शायद इसी तरह उसकी अकर्मण्यता दूर हो; पर सब उपचार व्यर्थ गये। मैंने सोचा कि लाओ परचेको कापी पर नक़ल कर दूँ और घरका रास्ता लूँ; पर 'जब तक साँस तब तक आस' ने ऐसा न करने दिया। मेरी इस समय ऐसी दशा थी कि परीक्षक महोदय यदि मेरे सामने आ खड़े होते तो मैं उन्हें मामा पुकार बैठता—सुना है कि साँपको भी मामा पुकारे तो उसे दया आ जाती है।

जब मनुष्य निरुपाय हो जाता है, तब मूर्खता पर कमर कसता है। संकटापन्न अवस्थामें अच्छे-अच्छे बुद्धिमानोंकी बुद्धि भी मोच खा जाती है, तो मेरी क्या बिसात ? मैं तो अपनेको किसी बुद्धिमानका इजारबन्द होने योग्य भी नहीं समझता।

मैंने जब अच्छी तरह देख लिया कि और कोई चारा नहीं है, तब मैंने यही निश्चय किया कि परीक्षकके नाम कापीमें एक पत्र लिख दूँ और लिखकर घरका मार्ग पकड़ूँ।

ज्यों-ज्यों मैं ग़ौर करता था, मुझे एक यही कार्यक्रम समयोचित और उपयुक्त जँचता था। इस कार्यक्रमकी विशेषता यह थी कि इससे हानि कुछ भी नहीं थी, क्योंकि परीक्षक यदि मेरी धृष्टतासे चिढ़ जाता, तो अधिक-से-अधिक मुझे फ़ेल कर देता। पर यह कौन-सी नयी बात हो जाती ? फ़ेल होना तो यों भी मेरा 'परीक्षा-सिद्ध' अधिकार था। इसके विपरीत यदि मेरा पत्र पढ़कर दया-से द्रवीभूत होकर वह कुछ नम्बर दे निकलता तब तो परीक्षा-फल निकलने पर मैं-ही-मैं दिखायी पड़ता। यह कोई असम्भव बात नहीं थी; परीक्षक बड़ा आदमी होता

है, और सुना है, बड़े लोगोंके 'दिल दरियाव' में अकसर अनायास ही दयाकी मौज उठने लगती है।

मैं इस पत्रमें परीक्षकके बाल-बच्चोंकी खैर मनाता और लिखता कि मेरी नौका मझधारमें है और आप ही उसके खेवैया हैं। इन बातोंके अतिरिक्त मैं एक बात बड़े मार्केकी लिखनेवाला था। वह यह कि इस साल मेरी शादी होनेवाली है; अगर फेल हो जाऊँगा तो फिर न जाने कितने दिनके लिये शादी टल जायगी; इसलिये यदि दया करके आप मुझे पास कर देंगे तो अप्रत्यक्ष रूपसे आपको कन्यादानका भी फल होगा।

मैं सोच ही रहा था कि इस पत्रको लिखना शुरू करूँ कि किसीने धीरेसे मेरे कंधेपर हाथ रक्खा। मैंने पीछे घूमकर देखा तो एक गार्ड महाशयको खड़ा पाया। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि वे और गार्डोंकी तरह हृदयहीन नहीं जान पड़ते थे। उनकी दृष्टिमें दया और स्पर्शमें समवेदना थी।

वे चले गये, पर मेरे हृदयमें आशाका सञ्चार कर गये। मुझे निश्चय हो गया कि वे मेरे लिये कुछ करेंगे। यही हुआ भी। वे थोड़ी देरमें टहलते हुए मेरे पास आये

और बड़ी सफाईसे एक सोख़तेका टुकड़ा मेरे पास फेंककर चल दिये।

मैंने उस सोख़तेके टुकड़ेको बड़ी सावधानीसे उलटकर देखा। उसपर पर्चेके दो सबसे कठिन प्रश्नोंके उत्तर उनकी संक्षिप्त विधिके सहित पेन्सिलके बहुत हलके हाथसे लिखे हुए थे।

अब क्या था! दो सवाल तो मैंने मार लिये। बाक़ी बच गये चार, कुल छः करने थे। इनसे कैसे निपटा जाय? अब आगेकी सुध लेनी थी। मेरे ऊपर अकारण कृपा करनेवाले गार्ड महोदय भी कहीं खिसक गये थे।

ठीक इसी समय एक ऐसी घटना हुई, जिसने मुझे सच पूछिये, तो क़तरेसे दरिया कर दिया। मुझसे कुछ दूरपर मेरे ही स्कूलका एक लड़का बैठा हुआ था। वह यकायक खड़ा हो गया और बड़े उत्तेजित स्वरमें अपने पासवाले गार्डसे बोला—'मास्टर साहब! मास्टर साहब!! यह चौथा सवाल ग़लत छपा है।' गार्डने उसे डाँटकर बैठा दिया। और सभी लोग उसकी बातपर अविश्वासकी हँसी हँस पड़े।

पर मैंने इस मौक़ेपर बड़ी समझदारीसे काम लिया।

मैं उस लड़केको बखूबी जानता था गणितके ग्रन्थोंकी सैकड़ों उदाहरणमालाएँ उत्तरों सहित उसको कण्ठस्थ थीं। ऐसा लड़का बिना कारण किसी प्रश्नको ग़लत नहीं बता सकता। मुझे विश्वास हो गया कि जब वह कहता है तब प्रश्न अवश्य ग़लत होगा। बस, मैंने पन्ना उलट लिया और मार्जिनमें प्रश्न नंबर ४ दर्ज करके उसके सामने लिख दिया—'इस प्रश्नको कई बार करनेपर मैं इस निष्कर्षपर पहुँचा हूँ कि यह ग़लत छपा है; इसलिये इसके उत्तर निकालनेकी आवश्यकता नहीं है।'

बादको साबित हुआ कि उस लड़केने ठीक कहा था। प्रश्न वास्तवमें ग़लत छप गया था। सारी यूनिवर्सिटीमें दस ही पाँच लड़के इस भेदको जान पाये थे, और उन लड़कों से परीक्षक बहुत प्रसन्न हुआ था। कहना न होगा कि उन्हीं दस-पाँचमें मैं भी एक था।

कहाँ एक सवाल भी पहाड़ हो रहा था, कहाँ चुटकी बजाते मैंने तीन कर लिये। छःमें तीन पास होनेके लिये काफ़ी थे; इसलिये चिन्ता जाती रही और उत्साह बढ़ गया। मैंने सोचा कि जब क़िस्मतने चराना शुरू किया है तब उसे चरानेका काफ़ी मौक़ा देना चाहिये। सम्भव है,

किसी सूरतसे, किसी ज्ञानेन्द्रिय-द्वारा, किसी ओरसे, किसी रूपमें, किसी प्रश्नपर, किसी समय, कुछ भी प्रकाश पड़ जाय, कोई इशारा मिल जाय, तो कुछ नम्बर और बटोर लूँ।

मैं शेष प्रश्नोंको बार-बार पढ़ने लगा। सिर्फ पढ़ना-भर हाथ लगता था; पर तब भी मैं बार-बार पढ़नेसे बाज न आया। एक प्रश्न दशमलवका था, जिसे मैंने दूर हीसे प्रणाम करके छोड़ दिया। मेरा विश्वास है कि भगवान रामचन्द्रने बजाय दशाननके दशमलवका संहार किया होता, तो अगणित स्कूली छात्रोंके धन्यवाद-भाजन बने होते। दूसरा प्रश्न ब्याजका था, जिसे मैं तुरन्त समझ गया कि इस जन्ममें न कर पाऊँगा। तीसरा सवाल इस प्रकार था—

'एक घड़ी तीन बजे चलायी जाती है और ठीक सात बजे वह बन्द हो जाती है। बताओ कि इतनी देरमें घड़ीकी दोनों सूइयाँ एक दूसरेको किस-किस समयमें पार करेंगी।'

ऐसे सवालोंको करनेके लिये अंकशास्त्रमें एक ख़ास तरीक़ा है, जिसे एक बार सीखनेकी कोशिश करनेपर मुझे सौ बार तोबा करना पड़ा था। और किसी वक्त मैं इस

प्रश्नकी ओर फूटी आँख भी न देखता, पर इस वक़ स्वयम् परमात्मा मेरी पीठपर था और मुझे तदबीरोंकी फ़ुरहरी सुँघा रहा था। जो प्रश्न मेरे लिये भरतपुरके क़िलेसे भी बढ़कर था, उसे मैंने आज यों सर किया।

मेरे जेबमें घड़ी थी। उसे मैंने निकाला। उसमें बारह बजे थे। मैंने उसमें तीन बजा दिये और फिर धीरे-धीरे सुई घुमाने लगा और देखने लगा कि दोनों सुइयाँ सात बजने तक कहाँ-कहाँपर मिलती हैं।

यों मैंने छःमें चार सवाल कर लिये। मूछें तो उस समय थी नहीं; पर जहाँ होनी चाहिये वहाँका चमड़ा ऐंठता हुआ मैं उस दिन मकान आया।

दो महीनेमें परीक्षाका फल प्रकाशित हुआ। दुनियाने देखा कि मैं पास हूँ। लोग आश्चर्यमें डूबे, उतराये और ऊभचुभ हुए। किसीने अन्धेके हाथ बटेरकी कहानी याद की। किसीने पत्थरपर दूब जमना स्वीकार किया। कई नास्तिकोंने ईश्वरको मान लिया। मैंने अपनी पीठ ठोंकी और कहा जीते रहो। जैसा मेरा राजपाट लौटा, वैसा ईश्वर करे सबका लौटे।

२

महावीर की माया

सारा मकान खँडहर हो रहा था। सिर्फ एक कोठरी साबुत बच गयी थी। लाला भिखारीदास इसीमें अपनी पत्नीके साथ गुजर कर रहे थे। आज इस कोठरीकी भी एक दीवार गिर गयी।

लेकिन जग्गू सावको इससे क्या? दूसरे दिन सुबह एक लट्ठधारी प्यादेको साथ लिये हुए जग्गू साव लाला भिखारीदासके आँगनमें आ खड़े हुए। भेड़ियेको देखकर भेड़की जो दशा होती है ठीक वही दशा इस समय भिखारी-

दासकी हुई। जग्गू सावने कहा—'लाला! लाओ मेरा रुपया निकालो।'

भिखारीदासने गिड़गिड़ाकर कहा—'सावजी! देखिये रहनेके लिये एक ही कोठरी थी, आज वह भी गिर पड़ी। इस समय बड़ी मुसीबतमें हूँ।'

'मुसीबतका रोना अब मैं नहीं सुन सकता। सीधेसे रुपया दोगे कि मुझे दङ्गा-फ़साद मचाना पड़ेगा।'

'नहीं नहीं, दया करके थोड़ी और मोहलत दीजिये। इस समय मैं बड़े संकटमें हूँ। गृहहीन हो रहा हूँ।'

'अब मैं एक दिन नहीं ठहर सकता। आज ही शाम-को फिर आऊँगा। रुपया तैयार रहे, नहीं तो तुम्हारे हक़में अच्छा न होगा।'

यह कहकर जग्गू साव चले गये। भिखारीदासको बहुत दुःखी देखकर उनकी पत्नीने कहा—'चलिये कहीं भाग चला जाय। घरके नामपर एक कोठरी थी, वह भी नहीं रही। अब किस मोहमें यहाँ अटके हैं?'

भिखारीदासजीको यह राय नितान्त नापसन्द नहीं थी, लेकिन एक बहुत बड़ी रुकावट थी। उन्होंने कहा—'मैं चला जाऊँगा तो यहाँ रामजीकी सेवा कौन करेगा?'

उनके मकानसे कोस-सवा-कोसकी दूरीपर रामजीका एक छोटासा प्राचीन मन्दिर था। गाँवके बाहर और सून-सान स्थानमें होनेके कारण कोई वहाँ दर्शन-पूजाके लिये न जाता था। लेकिन लाला भिखारीदास वहाँ सुबह और शाम दोनों वक्त जाते, मन्दिरमें झाड़ू देते, फूल चढ़ाते और थोड़ी देर राम-नाम जपकर चले आते। यह उनका नित्यका कर्म था। इसे करते उन्हें बरसों हो गये थे। पानी पड़ता या पत्थर, वे अपने इस काममें कभी न चूकते।

उस शामको भी मन्दिर जानेके लिये वे घरसे निकले। उन्होंने सोचा कि जग्गू साव इस समय आने कह गया है तो अवश्य आयेगा, उसके आनेके पहले मन्दिरसे हो आना चाहिये; वह आकर न जाने क्या दुर्दशा करेगा।

भिखारीदासजी मन्दिरमें जाकर बैठे, पर पूजा-पाठमें आज जी लगा नहीं। घर लौटते ही जग्गू सावका सामना होगा। वह क्या करेगा? क्या कहेगा? कैसे मानेगा? न जाने क्या क्या फजीहत करेगा। एक कोठरी थी, उसका भी नाम मिट गया। अब रात कैसे कटेगी?

रह-रहकर उनके संतप्त हृदयमें निराशाकी हूक उठती

थी उन्होंने अत्यन्त कातर दृष्टिसे रामजीकी प्रतिमाकी ओर देखा। हृदयसे उपालम्भ और प्रार्थनाका प्रवाह उमड़ चला......................

"मेरी तो जान साँसतमें पड़ी है और आप शेष-शय्यापर शयन कर रहे हो?

'साफ़ कह दो कि मेरे पास कुछ नहीं है। मैं सन्तोष कर लूँगा।

'समझ लूँगा कि दयानिधि तो स्वयम् दयनीय हो रहे हैं; उनसे क्या माँगू!

'सूखते थे नदी-नाले। क्या मेरे लिये आज करुणा-वरुणालय सूख गया?

'क्या मेरे कर्म्मोंसे आप हार जाते हो? तो छिपकर उनका संहार करो, जैसे बालिको मारा था।

'न मैं विभीषण-सा अपने कुलका कुठार हूँ और न सुदामा-सा चोर हूँ। इसलिये मित्र तो मैं आपका हो नहीं सकता।

'बन्दर भालू भी नहीं हूँ कि आपका सेवक बनूँ।

'हाँ कपूत हूँ। क्रोध करके एक ठोकर भी मार दो तो मैं पद-रज बनकर बड़े-बड़ोंके मस्तकपर चढ़ जाऊँ।

'भगवन्! रूखी-सूखी खाते मैं थक गया हूँ। क्या दूध दहीके लिये मुझे भी चोरी करनी पड़ेगी?

'मुझे गरीबीमें सन्तोष करनेकी शिक्षा देते हो? हिम्मत हो तो आप ही दो दिनके लिये लक्ष्मीको घरसे निकाल दो।

'कैसे हो नाथ? गोपियोंके घरका मनों माखन खा गये पर पिघलना न आया।''

लाला भिखारीदास रामजीकी मूर्तिके सामने बैठे हुए इसी प्रकार प्रलाप और विलाप कर रहे थे। कुछ देर बाद उन्हें स्वयम् ध्यान हुआ कि मैं यह क्या कर रहा हूँ। वे उठे और रामजीके चरण छूकर घरकी ओर रवाना हुए।

घर जाते समय उनके एक-एक पैर मन-मन भरके हो रहे थे। पहुँचते ही जग्गू सावसे साक्षात् होगा। वे एक लम्बे रास्तेसे होकर चले। जितनी देर उसका सामना बच सके उतना अच्छा।

इधर उनकी अनुपस्थितिमें जग्गू साव उनके मकानपर पहुँचे थे। किसी बाहरी आदमीने बता दिया कि इस समय तो लालाजी श्रीरामजीके मन्दिरमें मिलेंगे। जग्गू सावको

यह सुनकर क्रोध आया उनसे मुँह छिपाकर लालाजी मन्दिरमें जा बैठे हैं ! इस प्रकार कब तक भागते फिरेंगे ? जग्गू साव क्या मन्दिरमें उनका पीछा नहीं कर सकते ? वहीं चलकर उन्हें पकड़ा जाय। आज जहाँ हो जैसे हो रुपया वसूल करना है।

जग्गू साव मन्दिर पहुँचे। वहाँ कोई नहीं था। मन्दिर खाली पड़ा था। भिखारीदास नित्य संध्या समय मन्दिरमें एक दिया जला दिया करते थे। वही इस समय सूने मन्दिरमें टिमटिमा रहा था।

जग्गू साव इस मन्दिरमें पहले कभी नहीं आये थे। दियाके धुँधले प्रकाशमें उन्होंने देखा कि एक ओर बीचमें राम लक्ष्मण और जानकीकी प्रतिमाएँ हैं और सामनेकी दीवारपर गदा धारण किये 'बीर बजरङ्ग' की विशाल मूर्ति है।

पर जिसकी खोजमें जग्गू साव इतनी दूर आये उसकी तो मन्दिरमें कहीं परछाईं भी न थी। भिखारीदास आज चकमा दे गया। बचासे कल पूछा जायगा। अँधेरे मुँह जग्गू साव उसके मकानपर पहुँच जायँगे; तब देखें कहाँ भागकर जाता है ? कल लालाको छठीका दूध न याद करा दिया तो जग्गू सावका नाम नहीं।

इसी तरह मनमें कुड़बुड़ाते हुए जग्गू साव घर आनेके लिये मुड़े। उसी समय उन्हें ऐसा जान पड़ा कि रामजीकी मूर्ति हिल रही है। रामजी केवल हिल नहीं रहे थे, साथ ही धीरे धीरे मुँह भी खोल रहे थे। मुँह खोलकर उन्होंने पुकारा—'हनूमान् !'

जग्गू सावने देखा कि इसके उत्तरमें हनूमानकी मूर्ति भी हिल गयी और बोली—'हाँ महाराज !'

रामजीने कहा—'तुम कहाँ थे जी ? तुम्हें कबसे पुकार रहा हूँ।'

'महाराज ! यहाँसे चार कोसपर जो एक नगर बसा हुआ है वहाँ एक सभा हो रही थी। वहीं गया था।'

'क्या देखा तुमने सभामें ?'

'बहुतसे लोग एकत्र होकर किसी महात्माकी जै बोल रहे थे। इतनेमें १५–२० आदमियोंका एक दल जो हाथमें लाठी और सरपर लाल पगड़ी बाँधे था उनके बीचमें घुस आया और उसने इन लोगोंपर लाठीके ऐसे-ऐसे हाथ मारे कि............

'कोई मेरा भी नाम इस सभामें ले रहा था ?'

'हाँ महाराज ! जोरसे लाठी खानेपर कुछ लोग हाय राम कहते थे ।'

'खैर जाने दो । आजकी सभामें तुमने जो देखा है वह असहयोगका एक दृश्य था ।'

'महाराज ! मैं एक वरदान चाहता हूँ ।'

'माँगो'

'यह वरदान दीजिये कि मुझे कभी असहयोग न करना पड़े ।'

'रावणके समयमें मैं तुम्हें असहयोग करनेकी आज्ञा देता तो तुम क्या करते ?'

'श्री लक्ष्मणजीके चरणोंमें दाँत काट लेता ।'

'क्यों ?'

'इसलिये कि वे क्रोध करके मुझे एक तीर मार दें और मैं मर जाऊँ।'

'तुम हो निरे बन्दर। असहयोगका महत्व तुम नहीं समझ सकते।'

'इस समय इस बन्दरको श्रीमान्ने कैसे स्मरण किया?'

'हाँ असली बात तो भूली जा रही थी। तुमसे कहना यह था कि आज एक आदमीने मुझे बहुत खोटी-खरी सुनायी।'

'महाराज! मन्दिरमें एक व्यक्ति इस समय खड़ा है। आज्ञा हो तो उसके सरपर अपनी गदा दे मारूँ।'

यह सुनकर जग्गू साव थर-थर काँपने लगे। भागने-की शक्ति पैरोंमें नहीं थी। पर सरकी रक्षा आवश्यक थी। वे धोती खोलकर सरपर बाँधने जा रहे थे कि रामजीने कहा—'नहीं हनुमान्! वह तो मेरा एक भक्त था। अजी वही भिखारीदास जो नित्य दोनो वेला मेरी सेवा यहाँ करता है।'

'तब जैसी आज्ञा हो महाराज?'

'वह इस समय बड़े अर्थसंकटमें है। उसे कुछ दे डालो।'

'जो कहिये ?'

'इस समय पाँच सहस्र मुद्रा काफ़ी होगी, फिर देखा जायगा ।'

'जो आज्ञा । जाऊँ भिखारीदासके घरपर रख आऊँ ?'

'नहीं, कल प्रातःकाल मेरी सेवाके लिये वह यहाँ आयेगा ही । तुम अपने पैरोंके पास पाँच सहस्र गिनकर पहलेसे रख देना । वह समझ जायगा और उठा ले जायगा ।'

'जैसी आज्ञा महाराज ! यही होगा ।'

दोनों मूर्तियाँ चुप हो गयीं । जग्गू सावका हृदय उस दिन घर लौटते समय रेसके घोड़ेकी तरह दौड़ रहा था ! पांच हज़ार रुपैया—रामजीने स्वयम् अपने मुंहसे कहा । एक-एक हज़ारके पाँच तोड़े ! नोट हुए तो सौ-सौ के पचास नोट ! मुफ़्तमें इतना धन भिखारीदासको कल मिल जायगा । वह भिखमङ्गा क्या करेगा पांच हज़ार लेकर ? जग्गूसाव न जाने कितने ग़रीबोंको बरसों सूद-दर-सूदकी चक्कीमें पीसेंगे तब जाकर कहीं पांच हज़ार घरमें दिखायी पड़ेगा । यहाँ भिखारीदास है कि उसे योंही, बिना प्रयोजन, बिना परिश्रम, न हाथ मैला न पाँव

न चूना लगा न फिटकिरी, बैठे-बिठाये एक मुश्त पांच हजार मिल रहा है।

क्यों भिखारीदासको पांच हजार मिले ? क्यों न जग्गू सावको मिले ? कोई तदबीर, कोई तरकीब तो जरूर ऐसी होगी। कोशिश करनी चाहिये। जग्गूसावने बड़े-बड़ों को चराया; क्या भिखारीदाससे पार नहीं पा सकते ?

सुबहकी प्रतीक्षा करनेसे काम बिगड़ सकता था। जग्गूसाव इसी समय भिखारीदासके मकान पर पहुँचे। भिखारीदासने तो समझा था कि जग्गूसावकी बला कमसे कम दूसरे दिन तकके लिये टली। उन्हें इसी समय अपना दरवाजा खटखटाते देख वे बहुत डरे। उन्होंने कहा—'सावजी! माफ़ करियेगा। मैं नित्य शामको राम-जीके मन्दिरमें दर्शनके निमित्त जाता हूँ। इसीसे आज शामको आप आये तो भेंट नहीं हुई।

जग्गूसावने अपनी स्वाभाविक उद्दण्डताको दबाकर बड़ी भलमनसाहतसे कहा—'कोई हर्ज नहीं लालाजी! मुझे कोई कष्ट नहीं हुआ। मनुष्यको भगवानके पूजापाठमें जी लगाना ही चाहिये। आप नित्य सुबह भी तो दर्शनके लिये जाते हैं ?'

'जी हा, सुबह भी जाता हूँ।'

'मुझे रामजीके मन्दिरमें कल सुबह एक अनुष्ठान करना है। मैं चाहता हूँ कि उस समय वहाँ कोई न रहे। यदि आप कृपा करके कल सुबह मन्दिर न जायँ तो मैं बड़ा कृतज्ञ हूँगा।'

भिखारीदासको जग्गूसावकी झिड़की और फटकार अकसर ही सहनी पड़ती थी। सावजी उनसे कभी सीधे मुंह बात न करते थे। वही आज इतने नम्र और शिष्ट कैसे हो गये? यह 'अजगुति' भिखारीदासकी बुद्धिके परे थी। उन्हें यही नहीं समझमें आ रहा था कि वे आज 'तुम' से 'आप' कैसे हो गये।

जो उनसे कठोरतम व्यवहार करनेकी सामर्थ्य रखते हुए इतनी अच्छी तरह पेश आ रहा था उसकी एक साधारण-सी प्रार्थनाको अस्वीकार करनेमें भिखारीदासको दुःख हुआ। पर लाचारी थी। उन्होंने कहा—'सावजी! यह सम्भव नहीं है। मैं सुबह मन्दिरमें दर्शनके लिये अवश्य जाऊँगा। मैं सात वर्षसे यह करता आ रहा हूँ। मेरा नेम खंडित हो जायगा।'

'सिर्फ एक दिनकी बात है लाला जी!'

'जो कुछ हो, मुझे क्षमा करिये। मेरा दर्शनके लिये जाना आवश्यक है।'

'आपके जिम्मे मेरा तीन सौ रुपया निकलता है। मैं सब छोड़ देता हूँ। आपकी सरखत भरपाई करके लौटा दूँगा।'

'यह आपकी कृपा है पर मुझे मन्दिरमें जानेसे मत रोकिये। मैं अपना सात वर्षका······

'मैं पांच सौ रुपया और अपने पाससे देता हूँ, इसी वक्त। मान जाइये।'

'सावजी! मुझे रुपयेकी लालच न दिखाइये। जो कुछ सेवा कहिये मैं करनेको तय्यार हूँ, पर मैं अपने दर्शन में नागा नहीं पड़ने दे सकता।'

भिखारीदास किसी हालतसे राजी नहीं हुए। लेकिन हमारे सावजी भी पक्के व्यापारी थे। वे सौ लगाकर दो सौ पाना बुरा नहीं समझते थे। वे धीरे-धीरे बढ़ते हुए भिखारीदासको ढाई हजार तक देनेपर राजी हो गये।

लाला भिखारीदास सोचमें पड़ गये। ढाई हजार उन्होंने कभी देखा न था। उसकी कल्पना भी मुश्किलसे कर सकते थे। इतना समझ रहे थे कि ढाई हजारमें उनका

मकान जो खँडहर हो रहा था फिर खँडहरसे मकान हो जायगा; छोटे-मोटे सब कर्ज पट जायँगे और वह बड़ा रामायण भी खरीदा जा सकेगा जिसे लेनेके लिये वे बरसों-से लालायित थे। लेकिन सात वर्षका नेम कैसे टूट सकता है ? दर्शन तो अवश्य ही किया जायगा ! एक उपाय हो सकता है। उन्होंने कहा—'सावजी ! आपके प्रलोभनमें पड़कर मैं अधिक-से-अधिक इतना कर सकता हूँ कि मन्दिरमें समय टालकर आऊँ। मैं रोज सात बजे वहाँ पहुँच जाता हूँ; कल सुबह मैं नौ बजे आऊँगा। आशा है तबतक आपका अनुष्ठान समाप्त हो चुकेगा।'

भागते भूतकी लँगोटी भली। जग्गू सावने इसे स्वीकार कर लिया। मकानसे ढाई हजार लाकर उन्होंने उसी समय गिन दिया। भिखारीदासके ग्रहण कर लेनेपर ही उन्हें पूरा विश्वास हुआ कि अब यह सुबह नौ बजेके पहले मन्दिरमें न जायगा।

रातभर जग्गू सावको नींद नहीं आयी। सुबह पाँच हजार समेटनेकी खुशी थी। एक रातमें ढाई हजारका मुनाफा। क़िस्मत चमकना इसीको कहते हैं !

सुबह पौने सात बजे जग्गू साव रामजीके मन्दिरमें

पहुँच गये। उस वक्ततक हनुमानजीके पैरोंके पास रुपयों का कोई तोड़ा नहीं रक्खा गया था। रक्खे जायँगे थोड़ी देरमें। घबरानेका क्या काम है! रामजीकी आज्ञा तो टलेगी नहीं! देवता लोग समयके पाबन्द नहीं होते। फिर हनुमानजीके पास घड़ी भी तो न होगी!

साढ़े सात बजा। इस वक्त तक तो भिखारीदास रोज़ घर लौटता रहता होगा। क्या रामजीकी आज्ञानुसार हनु-मान रुपयेका प्रबन्ध नहीं कर सके? अरे नहीं! उनके लिये पाँच हज़ार क्या चीज है। जिसका गला चांपे होंगे उसीने रख दिया होगा।

पौने आठ, फिर आठ। जग्गू सावके चेहरेपर हवाई उड़ने लगी। हनुमानजी अपने घण्टोंका हिसाब ब्रह्माके दिनके अनुसार तो नहीं रखते? या भूल तो नहीं गये? जग्गू सावके माथेपर पसीना चुकचुका आया।

साढ़े आठ! जग्गू साव पागल-से हो गये। नौ बजे भिखारीदास आ जायगा। ढाई हज़ार उन्होंने अपने पाससे दिया, इसी आशामें कि पाँच हज़ार मिलेगा; यहाँ हनुमान ने अभीतक पाँच कौड़ी भी नहीं निकाली। यह कैसा धोखा। देवता होकर यह ठगहारी? जग्गू सावके साथ?

बड़ा क्रोध उन्हें आया। वे अपनेको रोक न सके। उछलकर एक लात उन्होंने हनुमानजीके पेटपर मार ही तो दी।

पर यह क्या! जग्गू साव गिरते-गिरते बचे। उनका पैर

हनुमानजीके पेट पर चपक गया। पैर जो चपका सो चपका। उन्होंने लाख कोशिश की पर अपने पैरको वहाँसे हटा न सके। उन्होंने हनुमान-जीके पेटपर एक लात क्या जड़ दी कि उनका पैर ही वहाँ जड़ा रह गया। बहुत छटपटाये पर पैरने हटना न जाना।

जग्गू सावको इस समय कोई देखता तो उसे पहले हँसी आती या दया, यह कहना कठिन है। वे न हिल सकते थे, न बैठ सकते थे। एक पैर जमीनपर था और

दूसरा सीधा उठा हुआ नब्बे डिगरीका कोण बना रहा था। इस पैरको उन्होंने अपने दोनों हाथोंसे पकड़कर खींचा पर उसने साफ़ कह दिया कि ना, मैं न हटूँगा, चाहे तुम मेरे ऊपर अपना सर पटक दो।

इसी समय जग्गू साबकी दृष्टि रामजीकी मूर्तिकी ओर गयी। कलकी तरह वह आज फिर हिलने लगी। उसने मुँह खोला और पुकारा—'हनूमान्!'

'हाँ महाराज!'—हनुमानजीकी मूर्तिने उत्तर दिया।

'तुमने मेरे भक्तको पाँच सहस्र मुद्रा दे दिया?'

'महाराज! ढाई हज़ार तो कल रात हीमें दिला दिया।'

'और बाकी ढाई हज़ार?'

'अभी दिलाये देता हूँ। असामी मैंने पकड़ रक्खा है।

३

लोहार की एक

पौ फटनेकी खुशीमें संसारके सारे मुरगे अपना गला फाड़कर चुप हो चुके थे। अब छोटी चिड़ियोंकी बारी थी। वे खुली हुई खिड़कियोंसे झाँककर सोनेवालोंको धिक्कार रही थीं।

जागनेकी कोशिशमें उसने भी कुछ करवटें बदल डालीं। पर दो करवटोंके बीचमें उसकी आँखें एक बार फिर जरा लग गयीं। इस समय उसने स्वप्न क्या देखा कि ब्रह्मा अपने कमण्डलमें हिमालय पर्वतको रखकर हिला रहे

हैं। वह उठ बैठा। उसने देखा कि उसके कमरेका दर-वाजा हाथोंसे, लकड़ियोंसे, जूतोंसे पीटा जा रहा है।

उसने घबराकर कमरा खोल दिया। बाहर बोर्डिंगके छटे हुए शैतानोंका एक दल खड़ा था। उनमेंसे एकने कहा—'अजी तुम अभी सो रहे हो। आज हम लोगोंकी पिकनिक पार्टी है। चलो तुम्हें भी चलना होगा।'

अपने दुर्भाग्यसे उसने नहीं करना नहीं सीखा था। यही उसकी कमी और कचाई थी। अपनी बुद्धिके बारबार मना करनेपर भी उसने हामी भर दी।
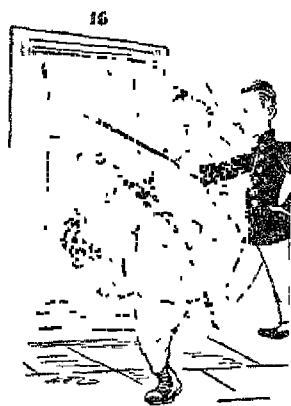
पिकनिकके लिये जो स्थान नियत हुआ था वह ठीक नदीके किनारे शहरसे ५–६ मीलके फ़ासलेपर था। रास्ता पगडंडियोंका था। पैदल चलकर वहाँ पहुँचना था।

सात बजे तक वे सब रवाना हो गये। उनकी संख्या दर्जनके पार ही थी। जिमि दशानन महँ जीभ बेचारी—वह भी उनके साथ चला।

पिकनिकका थोड़ा आनन्द तो उसे चलनेके पहले ही
हो गया जब प्रायः सभीने उसे अपनी एक-न-एक
हवाले की, और कहा कि इसे लिये चलो। मुरारीने
ना ओवरकोट उसके कन्धोंपर डाल दिया कि संध्या
य जरूरत पड़ेगी तो ले लूँगा। मोहनने दो मोटे उप-
उसकी बगलमें दबा दिये कि इच्छा होगी तो वहीं
लेटकर पढ़ूँगा। माधो आज नदीके
किनारे खुली हवामें कसरत करनेवाला
था। उसने अपने डम्बेल उसे पकड़ा
दिये कि वहाँ पहुँचकर तुमसे ले लूँगा।
मालगाड़ी-सा लदा हुआ और
इंजिन-सा हाँफता हुआ वह निर्दिष्ट
नपर पहुँचा। दोपहर तक खाना तैयार हुआ और
. खाने बैठे।

खानेके पहले वह हाथ-पाँव धोने नदीके किनारे गया
। लौटकर देखता है कि उसकी पत्तलसे चुरमेके लड्डू
ब हैं और दही-बड़ोंके नामपर सकोरेमें थोड़ा मठ
रहा है।

उसने एक लम्बी साँस ली और खाने बैठ गया।

खानेके बाद लोगोंने उसकी कमीज़में, जिसे उसने उतार कर टाँग दी थी, हाथ पोंछे। वह लेटा था कि उसकी नाक पर सुँघनी भुरकी जाने लगी। अपनी नाराज़ी प्रकट करने के लिये वह उनकी ओर पीठ फेरकर बैठा तो उसकी पीठ पर तबला बजाया जाने लगा।

वह सब से अलग एक पत्थरपर जा बैठा। उसका मन खट्टा हो गया था। उस की आज तक की आपबीती उसकी आँखोंके सामने एक एक करके गुज़रने लगी। बोर्डिंगमें उसका पहला दिन भी ख़ैरियतसे न बीता था—उसने अपने बादामी जूतोंपर काली पालिश पुती हुई पायी थी।

फिर तो वह रोज़ ही ऐसी हरकतोंका शिकार बनता। बाहरसे साँकल चढ़ाकर वह घण्टों अपने कमरेमें क़ैद कर

दिया जाता। बोर्डिंग भरमें जितने केले और सन्तरे खर्च होते सबके छिलके उसके दरवाज़ेपर फेंके जाते।

एक बार उसका आधा टिन घी ग़ायब हो गया और उसके स्थानपर उसे चावलका माँड़ भरा मिला। एक रोज़ पानी पीनेके लिये वह मुँहके पास लोटा ले गया था कि उसमेंसे एक जीता-जागता मेंढक उछल पड़ा, जिसे—पीछे

मालूम हुआ—मुरारीने कहींसे पकड़कर उसमें बन्द कर दिया था। लोटा हाथसे छूटकर उसके पैरके अँगूठेपर गिरा और वह अरसे तक लँगड़ाता रहा।

एक समय आता है जब चन्दन भी आग फेंक देता है। कितना सहूँ, कैसे सहूँ और कब तक सहूँ—यही प्रश्न उसके दिलमें उठते थे और विलीन होते थे। आफ़त एक तरफ़से हो और एक तरहकी हो तो कोई बर्दाश्त भी कर ले। यहाँ तो सारा बोर्डिंग एक विशाल कारख़ाना था जहाँ नित्य कोई नयी शैतानी गढ़-छीलकर तैयार होती और जिसकी आज़माइश उसीके ऊपर की जाती।

ख़ैर किसी तरह शाम हुई और दोस्तोंने चलनेकी

तैयारी की। वह भी उनके साथ चला। पर होनहारको कौन जानता था ?

वह दस क़दम भी न चला होगा कि चीख उठा। जब तक लोग उसके पास दौड़कर आवें तब तक वह लड़खड़ाकर गिर पड़ा। चारों ओरसे क्या है क्या है की आवाज़ आने लगी। उसने हाय मार कर कहा कि मुझे साँपने काट खाया।

यह सुनना था कि सबको जैसे काठ मार गया। यह कैसा रङ्गमें भङ्ग ! शहरसे सात मीलका फ़ासला और पग-डण्डियोंका रास्ता। कोई होशियार डाक्टर मिलता तो बेचारेकी जान न जाती। लेकिन डाक्टर बिना शहर गये कहाँ मिलेंगे।

मुरारीके भी हाथ-पाँव फूल गये थे पर उसने शीघ्र अपनेको सम्हाला। पासमें एक गाँव था। वहाँ किसी किसानसे उसने दो रुपयेमें एक खाट मोल ली।

इसी खाटपर उसे डालकर चार लड़कोंने अपने सर-पर उठा लिया और शहरकी ओर ले दौड़े। बाकी १०-१२ लड़के साथ-साथ दौड़ चले। पहली चौकड़ीके थक जाने-पर दूसरी चौकड़ी खाटको उठा लेती थी। योंही कन्धे बदलते वे भागे चले जा रहे थे।

उसका वज़न कम नहीं था। जो उसे र
उठाकर दौड़ रहे थे उन्हींका दिल जानता था
दौड़ते उनका बुरा हाल था। पसीनेसे तर तो स
थे। कुछ लड़के अपना पेट पकड़कर हाँफ रहे
भी दौड़ते जा रहे थे। रास्तेमें जो मिलता वही
तेज़ दौड़नेकी सलाह देता।

वह भी उन्हें दम न लेने देता था। वह ए
बराबर कँहर रहा था। कभी-कभी वह उठ
पागलों-सा हाथ पटकने लगता। उस समय
जिनके सरपर होती वे बेचारे त्राहि त्राहि पुकार
इतना भी समय न था कि रुककर ज़रा अपना
लेते।

अपनी विक्षिप्तताकी अवस्थामें वह अकसर चिल्ला उठता कि मेरी जान जा रही है और तुम लोग चहलक़दमी कर रहे हो ? यद्यपि न्यायकी बात यह है कि इस समय दौड़नेमें वे घोड़ोंको भी मात कर रहे थे। वह कभी-कभी मार भी बैठता। उसके दाहिने हाथकी ओर खाट उठानेमें लड़के झिझकते थे पर लाचारी थी, उठाना पड़ता।

खैर घण्टे भरकी सरपट दौड़के बाद शहरकी बिजलियाँ दिखायी पड़ने लगीं। शहरमें घुसते ही बोर्डिंग था और पास ही सिविलसर्जनका बँगला था।

लड़कोंने सिविलसर्जनके बँगलेपर उसकी खाट उतारी। घोर श्रान्तिके कारण वे मृतप्राय हो रहे थे। जिसे जहाँ जगह मिली वह वहीं गिरकर बैठ रहा। उनकी साँस धौंकनीकी तरह चल रही थी, मुँहसे सीधे बात न निकलती थी।

खैर साहबको ख़बर हुई। वे खाना खा रहे थे। छोड़कर बाहर आये। उन्हें देखकर वह उठ बैठा। साहबने पूछा—'तुम्हें साँपने कहाँपर काटा है ?'

उसने निहायत सादगी और सूधेपनसे कहा—'कैसा साँप ?'

'तुम्हे साँपने काटा है न ?'

'नहीं तो। कौन कहता है ?

साहबने उसके साथियोंकी ओर इशारा किया। उसने कहा–'ये सब शैतान हैं। आपको बेवकूफ बना रहे हैं। मुझे सांप क्यों काटने लगा ? मैं तो थक कर इस खाट पर सो गया था। ये सब शरारतन मुझे ले भागे।'

इस समय उन शैतानोंकी दशा देखने योग्य थी। जान पड़ता था कि किसीने तेजाबमें डालकर उन्हें पकाया है। साहब अपनी आँखोंसे उन्हें खा डालनेकी कोशिश कर रहे थे।

उसका ठहरना अब बेकार था। वह चलता हुआ। यार लोग साहबसे निपटते रहे।

उस दिनसे फिर उसे किसीने नहीं छेड़ा। उसके साथी उसे आदरकी दृष्टिसे देखते थे। उसका बोर्डिंगका जीवन चैनसे कटने लगा।

४

चार का विचार

उनके ख़तमें यह पढ़ कर कि तुम शायद मुझे भूल गये होगे, मैं हँस पड़ा। जिसके साथ अठबारों बिता मारा, अकसर रात-रातभर जाग कर, ताश खेला किया उसे कैसे भूल सकता हूँ!

बाबू वंसीधरजी ताशके बड़े शौकीन थे। खेलनेका बहाना ढूँढा करते थे। ताशकी एक पेटी सदा उनके जेबमें रहती। मौक़ा मिला कि खेलने बैठ गये।

बहुत दिनोंसे उनका कोई समाचार नहीं मिला था।

'नहीं तो। कौन कहता है ?

साहबने उसके साथियोंकी ओर इशारा किया। उसने कहा—'ये सब शैतान हैं। आपको बेवकूफ बना रहे हैं। मुझे सांप क्यों काटने लगा ? मैं तो थक कर इस खाट पर सो गया था। ये सब शरारतन मुझे ले भागे।'

इस समय उन शैतानोंकी दशा देखने योग्य थी। जान पड़ता था कि किसीने तेजाबमें डालकर उन्हें पकाया है। साहब अपनी आँखोंसे उन्हें खा डालनेकी कोशिश कर रहे थे।

उसका ठहरना अब बेकार था। वह चलता हुआ। चार लोग साहबसे निपटते रहे।

उस दिनसे फिर उसे किसीने नहीं छेड़ा। उसके साथी उसे आदरकी दृष्टिसे देखते थे। उसका बोर्डिंगका जीवन चैनसे कटने लगा।

४

प्यार का विचार

उनके खतमें यह पढ़ कर कि तुम शायद मुझे भूल गये होगे, मैं हँस पड़ा। जिसके साथ अठवारों बिला नागा, अकसर रात-रातभर जाग कर, ताश खेला किया उसे कैसे भूल सकता हूँ!

बाबू बंसीधरजी ताशके बड़े शौकीन थे। खेलनेका बहाना ढूँढा करते थे। ताशकी एक पेटी सदा उनके जेबमें रहती। मौक़ा मिला कि खेलने बैठ गये।

बहुत दिनोंसे उनका कोई समाचार नहीं मिला था।

आज यकायक उनका खत पाकर खुशी हुई। उन
था कि मेरे एक चचा बीमार हैं, उन्हें इलाजके
ला रहा हूँ, एक मकान किरायेपर ठीक कर रख

मैंने डा० ईश्वरसहायके बँगलेके पास ही ए
किरायेपर ले लिया और बंसीधरजीको लिख
आप आइये मकान ठीक हो गया है।

दो रोज बाद वे उस मकानमें आकर ठहर गये। मैं शामके वक्त उनसे मिलने गया। उनके चचाकी हालत खराब थी। एक तो बुढ़ापेका शरीर, फिर महीनोंका पुराना बुखार। तिसपर रेलमें हवा लगी या क्या हुआ कि यहाँ आते ही न्यूमोनिया हो गया। मैंने बंसीधरजीसे कहा—'भाई! हालत तो अच्छी नहीं है।'

'इसीलिये तो काशी ले आया।'

'क्या तुम्हारे सगे चचा हैं?'

'नहीं, दूरके रिश्तेसे चचा लगते हैं, पर बहुत दिनोंसे मेरे ही साथ रहते चले आये हैं।'

'डाक्टरोंकी क्या राय है?'

'उनका कहना है कि आजकी रात काट ले गये तो शायद बच जायँ।'

'जरूरत हो तो मैं भी आज यहीं रह जाऊँ?'

'नहीं, क्यों तकलीफ़ उठाओ? मैं हूँ, मेरा भाई है, एक और सज्जन साथमें हैं, दो नौकर हैं, इतने लोग काफ़ी हैं। फिर कोई खास जरूरत होगी तो तुम्हें बुला भेजूँगा।'

'जरूर बुला भेजना, किसी संकोचका काम नहीं है।'

यह कह कर मैं चला आया। रोगीकी जो दशा

मैंने देखी थी उससे मुझे आशा नहीं थी कि रात कुशल-से बीतेगी।

मैंने मकान लौट कर खाना खाया और लेटकर कुछ पढ़ने लगा। दस बजेके पहले मैं सो गया था। थोड़ी ही देर सो सका हूँगा कि किसीने बाहरसे आवाज़ लगायी। मेरी नींद खुल गयी। मैंने नौकरसे कहा कि ज़रा देख तो कौन है। नौकर थोड़ी देरमें एक ख़त लेकर लौटा कि इसे एक आदमी देकर चला गया है।

मैंने ख़त पढ़ा। बंसीधरजीका था। आख़िर वही हुआ जो मैं डर रहा था। उनके चचा साहब चल बसे। बंसीधरजीने केवल इतना लिखा था—

'चार आदमीकी ज़रूरत है। हम लोग तीन यहाँ हैं। तुम फ़ौरन चले आवो।'

हाँ, चार आदमीसे कममें तो किसी हालतसे काम न चलता। चार आदमी तो सिर्फ़ चचा साहबको श्मशानतक पहुँचानेके लिये चाहियें।

लेकिन मुझे यह अच्छा न लगा। यह कौनसी बात है कि किसीका कोई मर जाय और दस-पाँच आदमी भी साथ न जायँ। मान लिया कि बंसीधरजी परदेसी आदमी

थे और शहरमें उनका मेरे सिवा कोई परिचित नहीं था; लेकिन मेरा तो इस पड़ोसमें काफ़ी प्रभाव था। मेरे लिये दस-बीस आदमी बटोर ले चलना क्या मुश्किल काम था? ऐसे ही वक़्तमें मनुष्य मनुष्यके काम आता है।

मैं घरसे बाहर निकला। रात साढ़े ग्यारहका समय, फिर पूसका महीना। भयंकर सर्दी पड़ रही थी। हाथ-पैर ठिठुर रहे थे। सारा शरीर गन-गन-गन-गन कर रहा था।

मैंने मुरलीको, मोहनको, मुरारीको, माधोको आस-पासके घरोंसे जगाया। हिलते-कांपते वे मेरे साथ हो लिये। उन लोगोंने और भी आठ-दस आदमी पास पड़ोससे जगाकर साथ लिये।

मुरारीकी राय हुई कि वंसीधरजी परदेसी आदमी हैं, आखिर हम लोगोंको ही कफ़न काठीके लिये फिर आना पड़ेगा। इस लिये सब सामान इधरसे लेते हुए क्यों न चला जाय? यह राय सबको पसन्द आयी। हम लोगोंने रास्तेमें रुक कर मुर्दावलीके सब सामान खरीदे। वहीं अरथी वगैरः बनाकर हम लोग चले।

जाड़ेके मारे सबका बुरा हाल था। घरकी गरम चारपाइयोंको छोड़कर सब आये थे। कोई कम्मलकी

गाँती बाँधे था, कोई लोई या अलवान लपेटे था लेकिन इससे जाड़ा मानता है ? बोलनेमें लोगोंके दाँत बज रहे थे। ऐसे समयमें किसीको मरनेका अधिकार ही न होना चाहिये।

वहाँ पहुँचकर मैंने दरवाजा थपथपाया। बंसीधरजी मुझे इतने आदमियोंके साथ देखकर चौंके। जब उन्होंने कफनकाठी भी साथ देखी तब तो उनके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वे इस प्रकार घबरा गये जैसे कोई बुरा स्वप्न देख रहे हों।

मैं उनके आश्चर्यसे मनमें प्रसन्न हो रहा था। मुझे मारे संकोचके उन्होंने अकेला बुलाया था कि चार आदमी हो जायँ तो किसी तरह लाश उठायी जाय। मैं अपने साथ इतने लोगोंको ले आया। फिर उनकी कितनी तरद्दुद और परेशानी मैंने कम कर दी जो साथमें कफन-काठी इत्यादि लेता आया। उनका चकित होना उचित ही था।

उन्होंने पूछा—'ये लोग कौन हैं? यह सब कैसा सामान है?

मैंने कहा—'अब देर किस बातकी है? ले चलो।'

'किसे ले चलूँ? कहाँ ले चलूँ?'

'चचा साहबको श्मशान ले चलो।'

'क्यों?'

अब मेरा माथा ठनका। आखिर बात क्या है? बन्सीधरजी किस तरहकी बातें कर रहे हैं? मैंने कहा—'अभी तुमने जो खत मुझे भेजा था उसमें तुमने लिखा था न कि चचा साहबका शरीर छूट गया और······

'यह मैंने कब लिखा था?'

हाँ, यह तो उन्होंने नहीं लिखा था। मैंने सोचकर कहा—'तुमने लिखा था कि हम लोग तीन आदमी हैं, चौथे तुम फ़ौरन चले आओ।'

'मैंने तुम्हें ताश खेलनेके लिये बुलाया था।'

'ताश खेलनेके लिये?'

'हाँ। डाक्टर साहब ताकीद कर गये थे कि चचा-साहबको घंटे-घंटे भरपर दवा दी जाय। इस डरसे कि हम लोगोंकी कहीं आँख लग जाय और उन्हें दवा

ठीक समयसे न मिले हम लोगोंने आज सारी रात ताश खेलनेकी ठानी थी। तीन तो हम लोग थे ही, चौथा तुम्हे बुला भेजा था।'

इसके बादके सीनपर पर्दा डाल देनेका जी चाहता है। न मैं आगे बंसीधरजीसे आँखें मिला सकता था न पीछे फिरकर उन लोगोंकी ओर देख सकता था जो इस जाड़े-पालेमें रजाई-दुलाई फेंककर मेरे साथ कफन-काठी ढोते हुए इतनी दूर आये थे।

मेरे साथके पं० सखाराम बड़े आशावादी जीव थे। उन्होंने बंसीधरजीसे पूछा—'आपके चचा साहब अब कैसे हैं?'

'कुछ अच्छे जान पड़ते हैं। हालत सुधर रही है।'

लीजिये, एक यह आशा थी वह भी जाती रही। अगर अभी घंटे-दो-घंटेमें भी उनके मरनेकी आशा होती तो लोग ठहर जाते। जिस कामसे आये थे उसे निबटा कर जाते।

मुझे याद नहीं है कि इसके बाद मैं किन किन नामोंसे पुकारा गया। मैं मार नहीं खा रहा था इसीके लिये मैं ईश्वरको धन्यवादपर धन्यवाद दे रहा था।

साथके नवयुवकोंकी राय थी कि इसी काठीपर और इसी कफनमें मुझे श्मशान फेंक आया जाय पर किसीने यह कह कर उन्हें मना किया कि श्मशान कुछ हो कूड़ा फेंकनेके लिये नहीं बना है।

एक अधेड़ सज्जनने जाते-जाते मुझसे कहा कि तुम लड़के हो, तुम्हे छोड़ देता हूँ; लेकिन इसका बदला तुम्हारे बापसे मैं लूँगा।

५

धर्म का धुरा

श्री गोपाललाल जीके मन्दिरमें आज अच्छी चहल-पहल है। सजावटसे सारा मन्दिर जगमगा रहा है।

आज ठाकुरजीका श्रृङ्गार है। उन्हें सलमे सितारे से लैस पेशवाज़-सी कोई चीज़ पहना दी गयी है। वे पूरे नचनिया-से देख पड़ते हैं। सारे संसारको नचा मारने-की यही सज़ा है।

भोगके लिये तरह तरहके पकवान थालियोंमें सजाये जा रहे हैं। उनकी सुगन्धसे पुजारियोंके मुँहमें कर्मनाशा उमड़ी पड़ती है।

नाचने-गानेके लिये मिर्ज़ापुरसे गौनहारिनोंका एक प्रसिद्ध गोल बुलाया गया है। बहुतसे भक्त इन्हें घूरकर नयनानन्द प्राप्त कर रहे हैं। कितने बेचारे जो झाँकीकी इच्छा से आये थे ठाकुरजीकी ओर आँख उठाना तक भूल गये।

महन्त रङ्गनाथजी इस समय कामकी बड़ी भीड़में हैं। गौनहारिनोंको बैठाना, उनका आदर-सत्कार करना, उन्हें पान-पत्ता देना आदि ऐसे काम थे जिन्हें वे दूसरोंपर छोड़ कर निश्चिन्त नहीं हो सकते थे।

इस गोलकी जान छुन्ना और मुन्ना नामकी दो बहिनें

थीं। गानेमें उनका बड़ा नाम था। जिस समय 'सेजरि पै आवैला सजनवा आधी रात' की तान छेड़ती थीं लो चित्रलिखे-से रह जाते थे।

इन्हीं दोनों बहिनोंको महन्त रङ्गनाथजी उस सम जलपान करा रहे थे। छुन्नासे उन्होंने कहा—'एक मोत चूर और ले लो। मेरे कहनेसे।'

'अब इच्छा नहीं है महराज। पर आपका आग्रह तो लाइये दे दीजिये।'

'हाथ पर नहीं। मुंह खोलो मैं डाल दूँ।'

छुन्नाने हँसकर मुंह खोल दिया। महन्तजीने एक लड्डू उसके मुंहमें डालनेके लिये उठाया था कि उनके किसी शिष्यने आकर कहा—'महाराज! चमारोंका मुखिया हींगन चौधरी फाटकपर खड़ा है और कहता है कि मैं भी ठाकुरजीके दर्शन करूँगा।'

यह सुनना था कि महन्तजीका पवित्र खून उबल पड़ा। जो लड्डू छुन्नाके मुंहमें डाल रहे थे वह हाथ हिल जानेसे उसकी नाकपर गिरा और चूर हो गया। उन्होंने कड़क कर कहा—'हींगनसे कहो अपनी खैरियत चाहे तो सीधे घर लौट जाय। जातका चमार और मन्दिरमें घुसना चाहता है?'

धामपुर, जहाँ श्री गोपाललालजीका यह प्राचीन मन्दिर है, एक छोटासा क़सबा है। अधिकांश बस्ती मुसलमान जुलाहोंकी है। हिन्दुओंमें सबसे अधिक संख्या रैदासोंकी है।

शिष्यने कहा—'महाराज! मैंने बहुत समझाया पर हींगन नहीं मानता।'

महन्तजीने आकाशकी ओर आँखें उठाकर कहा—'हे भगवान्! कलिकी लीला तो अब असह्य हो रही है।

चमार मन्दिरोंमें घुसनेका साहस कर रहे हैं। प्रलयमें अब क्यों विलम्ब करते हो ?'

दर्शकोंमें भूरीसिंह नामका एक व्यक्ति था जो असहयोगके दिनोंमें कई बार जेलोंकी हवा खा चुका था। उससे चुप न रहा गया। उसने कहा—'महन्तजी ! चमार भी आखिर हिन्दू हैं। कोई कारण नहीं है कि वे दर्शनसे वंचित किये जायँ।'

रङ्गनाथने बिगड़ कर कहा—'भूरीसिंह ! तुम धामपुरके पुराने निवासी न होते तो मैं तुम्हें मन्दिरके बाहर निकलवा देता।'

'मेरी बात आपको बुरी लगती है तो मैं चुप रहूँगा पर यह समझ लीजिये कि हींगन फाटकपर अड़ा हुआ है और उसके साथ उसकी बिरादरीके और लोग भी जमा हो गये हैं। बलपूर्वक आप उन्हें वहाँसे हटा नहीं सकते।'

वास्तवमें यह एक समस्या थी। महन्तजी सोचमें पड़ गये। उन्होंने भूरीसिंहसे कहा—'तुम्हें उनसे बड़ी सहानुभूति है, तुम्हीं उन्हें किसी प्रकार हटाओ। मन्दिरमें तो मैं उन्हें कदापि न आने दूँगा।'

झूरीसिंहने उत्तर दिया—'उचित तो यही था कि आप उन्हें मन्दिरमें आने देते पर आप नहीं मानते हैं तो मैं उन्हें समझा बुझाकर हटानेकी कोशिश करता हूँ।'

सहानुभूतिमें कुछ ऐसी शक्ति होती है कि झूरीसिंहके समझानेसे हींगन सिर्फ इतनेपर राजी हो गया कि वह मन्दिरके पिछले फाटकपर खड़ा रहे और पूजाके उपरान्त उसे तुलसीदल मिल जाय।

इस झगड़ेके तय हो जानेपर पूजा शुरू हुई। भोग-की सामग्री सजी-सजायी थालियोंमें ठाकुरजीके सामने रक्खी जाने लगी। दर्शकोंका ध्यान बँट गया। एक आँख छुन्ना मुन्नाके गोलपर और एक आँख पकवानकी थालियों-पर। भोग लग जानेपर घण्टा शंखके साथ आरती शुरू हुई। नगाड़ेके कुडुकधुमसे दिशायें गूँजने लगीं।

आरती अभी हो ही रही थी कि पत्थरका एक टुकड़ा बाहरसे उड़ता हुआ आया और एक दर्शककी खोपड़ीपर तड़ाकसे गिरा। वह बेचारा छितरा कर वहीं गिर पड़ा। फिर दूसरा टुकड़ा भी आया और एक पुजारीके दाँत ले-बीता। इसके बाद तो मन्दिरमें पत्थरोंकी वर्षा होने लगी। दर्शकमण्डलीमें हड़कम्प फैल गया। आरती तो उसी दम

बन्द हो गयी। लोग अपनी अपनी जान लेकर इधर-उधर छिपने लगे। जिन्हें छिपनेकी भी जगह न थी वे सरकी रक्षाके लिये उसपर टाट या टोकरी रखने लगे। एक पुजारी जी को जल्दीमें कुछ न मिला तो उन्होंने पासमें खड़े एक बच्चेको उठाकर अपने सरपर रख लिया।
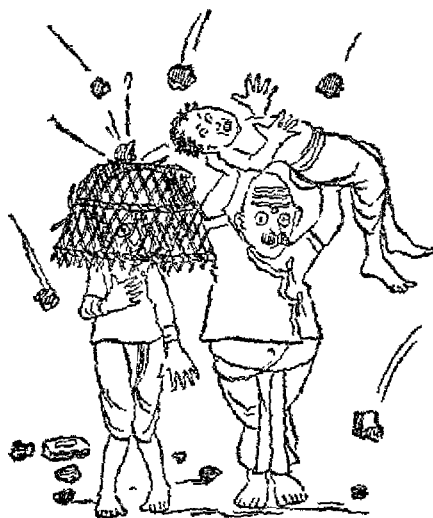
इतने लोगोंमें एक भूरीसिंहकी अक्ल कुछ ठिकाने थी। उसने मन्दिर की दीवार परसे झाँक कर देखा कि बाहर जुलाहे इकट्ठा हो रहे हैं। यह तो प्रत्यक्ष ही था कि मन्दिर लूटना उनका उद्देश्य था। उनकी संख्या बराबर बढ़ती जा रही थी। वे इसी इन्तेजारमें थे कि ताक़त उनकी काफ़ी हो जाय तो मन्दिरपर धावा बोल दें। तबसे समयका सदुपयोग करनेके लिये पत्थर-रोड़े बरसा रहे थे।

भूरीसिंहने इस समय बड़ी तत्परतासे काम लिया। उसने झट मन्दिरका फाटक बन्द कर दिया।

महन्त रङ्गनाथजीने भूरीसिंहसे पूछा—'जुलाहे सिर्फ मन्दिर ही लूटेंगे या हम लोगोंको पीटेंगे भी ?'

भूरीसिंहने मन-ही-मन कुढ़कर उत्तर दिया—'मन्दिर लूटनेके बाद यदि समय मिला तो दो-एक पानी पीट भी लेंगे।'

'हम लोग किसी तरहकी बाधा न डालेंगे तो हमें क्यों पीटेंगे ? लो भूरीसिंह ! यह उस सन्दूककी ताली है जिसमें ठाकुरजीके चाँदीके बर्तन भरे रक्खे हैं। इसे उनके आगे फेंक दो और फाटक खोल दो।'

भूरीसिंहने ताली उठाकर कुँएमें फेंक दी और बिगड़ कर बोला—'महन्तजी ! अपनी खाल बचानेका इतना ख़याल है पर इसका रत्तीभर ख़याल नहीं कि जुलाहे मन्दिरमें घुस आयेंगे तो ठाकुरजीकी मूर्तिको भी नष्ट भ्रष्ट कर डालेंगे ? थुड़ी है आपकी जिन्दगी को !'

महन्तजीने निगाहें नीची करते हुए कहा—'भूरीसिंह ! ठाकुरजीकी मूर्ति नष्ट हो जायगी तो दूसरी मूर्ति आ जायगी पर हम लोगोंकी जान जायगी तो दूसरी जान कहांसे आयेगी ?'

'और ठाकुरजीकी अप्रतिष्ठा जो होगी ?'

'ठाकुरजी हर्ष-विषाद रहित हैं, मानापमानसे परे हैं ।'

महन्तजीसे बहस करना बेकार था । इस समय एक एक सेकेण्ड महँगा हो रहा था । भूरीसिंहने दौड़कर मन्दिरका पिछला फाटक खोल दिया । हींगन चौधरी अपने १०—१२ साथियों सहित तुलसीदलकी प्रतीक्षामें बैठे हुए थे । भूरीसिंहने कहा—'भाई हींगन ! जुलाहे मंदिर लूटना चाहते हैं । वे अपने दलबल सहित चढ़े आ रहे हैं । अब जैसे बने तैसे मन्दिरकी रक्षा करो ।'

हींगन तमतमा कर खड़ा हो गया और बोला—'का कह्यो भैया, जुलाहे ठाकुरजी कै मन्दिर लूटै चढ़े आवत हैं ? हमहनके जियतै ? भैयाकी बात ! अरे बुधरमवा, धौड़के भाई लोगनके बटोर तौ ले आव । हमहन तबसे भित्तरसे जायके फाटक छेंकत हई । कुछ हल्ला गुल्ला हमहूँ सुनत रहे, मुदा हम जाना कि पुजारी लोग परसादी के बदे मुड़-फुरौवल कर रहा हैं ।'

इधर जुलाहोंने फाटक तोड़नेका कार्य्य शुरू कर दिया था । पुराना फाटक उनके प्रहारोंको देरतक न सह सका । हींगन अपने साथियों सहित दौड़ता हुआ वहाँ

पहुँचा था कि फाटक अरराकर गिरा और जुलाहे भीतर पिल पड़े।

उन्होंने देखा कि हींगनका दल एक ठोस दीवालकी तरह सामने खड़ा है। चमार संख्यामें बहुत कम थे पर वे मरने-मारनेके लिये तैयार जान पड़ते थे। उन्हें आज इस बातका घमण्ड था कि वे ठाकुरजीके सामने बीच मन्दिरमें खड़े हैं और उन्हीं हिन्दुओंकी रक्षा कर रहे हैं जो उन्हे पशुओंमे भी तुच्छ समझते हैं।

जुलाहे ठिठक गये। उनका जोश कम हो गया। उन्होंने देखा कि मन्दिरको लूटना दाल-भातका कौर नही है जैसा उन्होंने समझ रक्खा था। उनके मुखियाने सोचा कि अब अगर हेकड़ीमे काम निकले तो निकाल लेना चाहिये, नहीं तो खसक देना चाहिये। उसने डपट कर पूछा—'महन्त कहाँ है?'

लोग अभीतक महन्त रङ्गनाथको भूले हुए थे। वे कहीं दिखायी भी नही पड़ रहे थे। जो लोग बहुत पासमें थे उन्होंने देखा कि वे गौनहारिनोंके गोलमें छुन्ना मुन्नाकी पीठके पीछे छिपे बैठे हैं।

मुखियाने फिर पूछा—'कहाँ है महन्त? जो उसे छिपायेगा उसके हक़में अच्छा न होगा।'

मुखियाकी धमकी काम कर गयी। लोगोंने सोचा कि अगर महन्तके बलिदानसे सबकी जान बच जाय तो क्या बुरा है। गौनहारिनोंके ग़ोलपर इस धमकीका तात्कालिक प्रभाव पड़ा। महन्तजी उन्हींके बीचमें छुन्नाके पीछे छिपे बैठे थे और इस कोशिशमें थे कि किसी प्रकार उसकी पीठकी रीढ़ बन जायँ तो कोई उन्हें देख न सके। छुन्नाने उनसे दूर खसक कर कहा—'महन्तजी! आप मर्दोंकी क़तारमें जाइये। यहाँ छिपियेगा तो मुफ़्में हम औरतोंकी जान जोखिममें पड़ेगी।'

महन्तजीने गिड़गिड़ाकर कहा—'नहीं छुन्ना, मेरा इस समय परित्याग न करो। मैं तुम्हें बहुत प्यार करता हूँ। आजीवन तुम्हारा दास होकर रहूँगा।'

'नहीं नहीं! आप जाइये यहाँसे। आपके पीछे हम अपनी जान नहीं गँवायेंगी।'

'याद करो छुन्ना, उस दिन मैंने घण्टों तुम्हारे पैर दबाये थे।'

'तो इससे क्या? इन बातोंका समय फिर कभी आयेगा। इस समय आप हमारा पिण्ड छोड़िये।'

'छुन्ना! तुम देवी हो, भगवती हो, मेरी रक्षा करो।'

'आप यहाँ से भागते हैं कि आपको धक्का देना होगा ?'

'हाय राम ! तुम स्त्रीलिंग होकर इतनी कठोर क्यों हो ?'

महन्तजीसे बातें करना समय नष्ट करना था। कुन्नाने उनका दाहिना कान पकड़ा, मुन्नाने बायाँ, और दोनोंने उन्हें घसीट कर सबके सामने खड़ा कर दिया।

किसी बन्द पक्के कमरेमें एक चूहेको छोड़ देने पर वह बिलकी तलाशमें दीवारोंसे टकराता हुआ इधर उधर भागता है। ठीक यही दशा अब महन्तजीकी थी। वे

छिपनेकी इच्छासे कभी एक ओर भागकर जाते कभी दूसरी ओर। जिधर जाते उधरसे खदेड़े जाते। जब उन्होंने दर्शकों की मण्डलीमें छिपनेकी कोशिश की तब किसीने उन्हें धक्का देते हुए कहा—'महन्तजी! यहाँ आपका क्या काम है? आपको जुलाहे अगर मार भी डालें तो आपके नाम कौन रोने वाला है। आज मरे कल दूसरा दिन। हम लोग अगर मारे गये तो सारा कसबा अनाथों और विधवाओंसे भर जायगा।'

महन्तजीको जब कहीं शरण नहीं मिली तब वे पुजारियोंके बीचमें जाकर छिपे। जिन पुजारियोंको सदा चुपड़ी चभाकर उन्होंने सण्ड-मुसण्ड बनाया था कम-से-कम वे तो उनकी रक्षा अवश्य ही करेंगे।

लेकिन नहीं। इस समय कुएँमें ही भयकी भाँग पड़ गयी थी। सब अपनी अपनी जानकी खैर मना रहे थे। पुजारी लोग ठाकुरजीकी टहलके लिये थे, महन्तके लिये अपनी जान गवाँनेके लिये नहीं। फिर उन्हें क्या, जो ही महन्त होगा वही उनके शरीरको घी दूधसे सींचेगा। इस समय रङ्गनाथको आश्रय देना अपने हाथोंसे अपने जीवनकी बत्तीको गुल करना था। किसकी आयु खुटायी थी जो उन्हें अपने पास छिपने देता।

पहले तो पुजारियोंने मना किया कि हम लोगोंके पास मत आइये। उन्होंने जब नहीं माना तब उनमेसे एकने उनका हाथ पकड़ कर उसी ओर ढकेल दिया जिधर जुलाहोंकी जमात खड़ी थी। उनके मुखियाने महन्तजीको अपने पास आया देखकर पकड़ना चाहा। उसने हाथ बढ़ाया था कि हींगनने कड़ककर कहा—'खबरदार! महन्तजीके छुइहौ तौ हम खोपड़ी रँग देवै।'

मुखियाने सहमकर अपने हाथ बटोर लिये। हींगनको मौका मिल गया। उसने रङ्गनाथको खींचकर अपने बगलमें खड़ा कर लिया।

महन्त तो हाथसे निकल गया। अब क्या किया जाय? मुखियाने सोचा कि अब केवल एक उपाय है। चमार अगर किसी तरह नाराज़ हो जायँ और मन्दिरकी रक्षासे खुद ही मुंह मोड़ लें तो अब भी काम बन जाय। मुखियाने हींगनकी ओर देखकर कहा—'अपनी समझमें तुम इस वक्त बड़ी बहादुरी कर रहे हो। यह नहीं समझते हो कि काम निकल जानेपर यही महन्त तुम्हे मन्दिरसे निकाल बाहर करेगा और फिर कभी फाटकके पास भी न फटकने देगा।'

बात यह सच थी। हींगन तो विचलित नहीं हुआ

पर उसके साथियोंपर इसका प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा। उनकी आँखें एक वार झिप गयीं। वे कभी ज़मीनकी ओर देखते कभी महन्त रङ्गनाथकी ओर।

महन्त रङ्गनाथ इस समय ऊपरसे शान्त थे पर हृदय में उनके भारी क्रान्ति मची हुई थी। गौनहारिनोंने उनके साथ बुरा सलूक किया तो किया, उनकी तो ज़ात ही निकम्मी है; पर दर्शक-मण्डलीमें भी एक आदमी ऐसा न निकला जो उन्हें शरण देता? फिर पुजारियोंसे ऐसी आशा नहीं थी। जो महन्त उन्हें सेरों बादामकी ठंढाई रोज़ छनाता था उसके साथ ऐसा विश्वासघात? अन्तमें आड़े आये तो वही चमार जिनकी परछाईंको भी वे अपवित्र मानते थे।

जिस बातको व्याख्यानों द्वारा वे कल्पान्त तक न समझ सकते आज उसी बातको वे पाँच मिनटमें समझ गये। उन्होंने ऊँची आवाज़से पूछा—'कौन कहता है कि हींगन और उनके साथियोंको मैं मन्दिरमें न आने दूँगा?'

'मैं कहता हूँ'—जुलाहोंके मुखियाने कहा—'आजके पहले वे कभी मन्दिरमें आने पाये थे?'

'नहीं; मुझे इसका खेद है, मैं उनसे क्षमा माँगता हूँ। आजसे मैंने मन्दिर उनके लिये खोल दिया।'

'क्या आप उन्हें अछूत नहीं समझते ?'—मुखियाने पूछा।

'बिल्कुल नहीं।'

'इसका सबूत क्या है ?'

'मैं सबूत देता हूँ, देखो।'

रङ्गनाथजीने कह तो दिया कि सबूत देता हूँ पर वे खुद नहीं समझ सके कि क्या सबूत दूँ। छूआछूतका माँड़ा उनकी आँखोंसे कटकर गिर गया था। पर न्याय और औचित्यका दिव्य आलोक उन आँखोंमें चौंधी पैदा कर रहा था।

अपनी घबराहटमें जो सबूत देना उन्होंने उचित समझा उसकी कल्पना किसीने स्वप्नमें भी नहीं की थी। हींगनके गलेमें अपनी बाहें डालकर वे झूल गये और उसका गाल अपनी ओर खींचकर उन्होंने चूम लिया।

अपने सनातनी विचारोंकी बेड़ी काटकर महन्तजीने

जो छलाँग भरी वह आवश्यकतासे कहीं अधिक थी पर उसका परिणाम अच्छा ही हुआ। हींगनने अपने उस गालको, जिसपर महन्तजीने अभी चुम्बन जड़ दिया था, सहलाना समाप्त भी न किया था कि जुलाहोंने वहाँसे छँटना शुरू किया। देखते ही देखते मैदान उनसे खाली हो गया।

उनके चले जानेसे पुजारियों और दर्शकोंके मनसे लाखों मनका बोझ उतर गया। लोगोंने खुलकर साँस ली और ईश्वरको धन्यवाद दिया। इसी समय जब झूरीसिंहने 'महन्त रङ्गनाथकी जै' का नारा लगाया तब सबने एक स्वरसे उसके स्वरमें स्वर मिलाया।

६

श्रद्धेयका श्राद्ध

वे महिला-मन्दिरके मंत्री थे, स्त्री-सेवा-सदनके सभापति थे। लोग बाबू जीवनदासको अत्यन्त श्रद्धाकी दृष्टिसे देखते थे। श्रद्धेयका शब्द उनके नामके आगे यों चलता था जैसे दूल्हेके आगे शहनाई चलती है।

मुरारीने जब उनके ऐसे व्यक्तिके ऊपर चरित्रहीनताका दोष लगाया तब मैंने उसे मारा नहीं यही बहुत किया। हाँ मैंने उसे जलीकटी खूब सुनायी। मैंने कहा—'मुरारी! तुम आदमी नहीं हो, तुम हो चुकन्दरकी जड़।'

'मैं सच कहता हूँ.........

'अजी हटो। तुम्हारे दिमाग़में तो खेतकी खाद भरी हुई है।'

'विश्वास मानो............

'तुम तो यार बिल्कुल एक-बटे-तीन हो। मैं इतना बड़ा उल्लू होता तो माता लक्ष्मी मेरे ऊपर अवश्य कृपा करतीं।

'यों ही बकते रहोगे तो लो मैं जाता हूँ।'

'जाओ, मैं दुआ देता हूँ कि तुम्हें सुग्रीवकी सेनामें हवलदारी मिल जाय।'

'मैं फिर भी कहता हूँ कि जीवनदास पक्का व्यभिचारी और लम्पट है।'

'तुम तो भाई न जाने किस दलदलकी काई हो कि हटाये नहीं हटते।'

'अच्छा अपनी आँखों देख लोग तो मानोगे ?'

मैंने अपना पिण्ड छुड़ानेके लिए हाँ कर दिया। मैं क्या जानता था कि वह अपने आरोपको सच्चा प्रमाणित कर देगा।

दूसरे दिन शामको पाँच बजे उसने मुझे बाबू जीवन-

दासके मकानकी पीछेवाली गलीमें ला खड़ा किया। उनके मकानका सदर दरवाज़ा सड़क पर था, पर इस गलीमें भी एक छोटा दरवाज़ा था जो आम तौरसे बन्द रहा करता था। मुझे देखकर आश्चर्य हुआ कि थोड़ी देरमें यह दरवाज़ा खुला और उसमेंसे चार कहार एक डोली लिये हुए बाहर निकले। डोली पर लाल कपड़ेका ओहार पड़ा हुआ था। भीतर कोई जनानी सवारी जान पड़ती थी।

हम लोग एक दीवारके पीछे छिपे हुए थे। डोलीके आगे बढ़ जानेपर हम लोग कुछ फ़ासला रखते हुए पीछे-पीछे चले। डोली पार्कके सामनेसे होकर एक बन्द गलीमें घूम गयी और वहाँ एक मकानके फ़ाटकपर रुकी। फ़ाटक खुला और कहार डोली लिये भीतर चले गये। फ़ाटक फ़ौरन बन्द हो गया।

मुरारीने पूछा—'कुछ समझे डोलीमें कौन था?'

'मैं नहीं था, और जो रहा हो।'

'डोलीमें श्रद्धेय बाबू जीवनदासजी थे।'

'अजी सच कहना! डोलीमें छिपकर किससे मिलने आये हैं?'

'गत चन्द्रग्रहणके अवसरपर किसी देहाती ब्राह्मणको

नवयुवती पत्नी भीड़में छूट गयी। उसे लोगोंने अबलाश्रम-में भरती कर दिया। बाबू जीवनदासजी उसे उसके घर भेजनेके बहाने अबलाश्रमसे उड़ा लाये। उन्होंने उसे इस मकानमें रख छोड़ा है। रोज इसी समय उससे मिलनेके लिये डोलीमें छिपकर आते हैं।'

मैं जी-जानसे यह चाहता था कि मुरारीकी बातोंपर विश्वास न करूँ पर संशयका कोई स्थल दिखायी न पड़नेसे मैं लाचार हो गया। मुरारीने फिर कहा—'बाबू जीवन-दासके दुर्भाग्यसे इस स्त्रीके सरपर सतीत्वका भूत अभीतक सवार है। इसलिये उसे ठोंक-पीट कर राजी करनेके लिये जैनब नौकर रक्खी गयी है जो बराबर उसके साथ रहती है।'

'यह जैनब कौन है? नाम कहीं सुना है।'

'जरूर सुना होगा। बहुत दिनोंतक महन्त जानकी-नाथकी अवसर-प्राप्त रखेली थी और राय बटुकनाथकी स्थानापन्न भार्य्या थी। अभी दफा ३६५ में दो वर्षकी सजा भुगत कर छूटी है।'

'अजी मैं जीवनदासको बहुत अच्छा आदमी सम-झता था।'

कल मैं मुरारीको बहुत कुछ उलटा-सीधा सुना गया

था । मैं डर ही रहा था कि मौक़ा मिलनेपर वह बदला लेनेसे न चूकेगा । वही हुआ । उसने कहा—'तुम आदमी तो हो नहीं, तुम तो हो बारहसिंघेकी दुम ।'

'देखो..................

'क्या देखूँ ? जिसे तुम अपना सर समझते हो उसे मैं सड़ा हुआ पहाड़ी आलू समझता हूँ ।'

'मेरी बात सुनो.........

'नहीं मेरी बात सुनो । यह पृथ्वी अगर किसी दूसरे ग्रहसे चन्द्रमाके सदृश दिखायी पड़े तो तुम्हारे ऐसे लोग उसमें काले धब्बेसे जान पड़ेंगे ।'

'अच्छा जाओ अब बहुत हुआ ।'

'हाँ जाता हूँ और जाकर उस धोबीके कान पकड़ता जो तुम्हें योंही खुला छोड़ देता है ।

उस दुष्टसे पार पाना मुश्किल था । मैंने कहा—'अच्छा माफ़ करो । कल मैंने तुम्हें जो कुछ कहा था उसके लिये खेद प्रकट करता हूँ ।'

'हाँ अब तुम ठीक राहपर आये । कहो क्या कह रहे थे ?'

'पापी जीवनदासकी पोल खोलनेकी एक तरकीब मैंने

सोची है। कल अबलाश्रमकी सहायताके लिये एक सभा इसी पार्कमें साढ़े पाँच बजे होने वाली है। संयोजकोंमें जीवनदासका नाम सर्वप्रथम है, पर मुझे विश्वास है वह आयेगा नहीं, क्योंकि वही समय उसका घरसे डोलीमें बैठ कर यहाँ आनेका है। मैं सोचता हूँ कि जब उसकी डोली पार्कके सामनेसे गुजरे मैं सारी सभाको तब दिखा दूँ कि महिला-समाजके परम हितैषी आदरणीय बाबू जीवनदास अमुक कार्यसे डोलीमें बैठे वह चले जा रहे हैं।'

मुरारीने थोड़ी देर सोचकर कहा—'उपाय बुरा नहीं है, पर तुम उसे पूरा उतार सकोगे इसमें मुझे सन्देह है।'

मैं चिढ़कर बोला—'तुम आदमी तो हो नहीं, तुम तो हो चुकन्दरकी जड़।'

'फिर वही बात! अच्छा मैं भी शुरू करता हूँ......

'न-न-न-न-न......न तुम मुझे कुछ कहो, न मैं तुम्हें कुछ कहूँ।'

मुरारी अन्त तक यही कहता रहा कि तुम कोई न कोई गलती करके मुँहकी खाओगे। पर मुझे अपनी तरकीब पसन्द थी। मैं उसपर दृढ़ रहा।

दूसरे दिन पार्कमें सभा हुई। बाबू जीवनदास नहीं

आये। उन्होंने बीमारीका बहाना कर दिया। सभामें उपस्थिति अच्छी थी पर किसी कम-अक्ल वक्ताने आरम्भ ही में चन्देका नाम ले लिया। इससे भीड़ कुछ छँट गयी जिसका मुझे अफसोस हुआ, क्योंकि मैं अधिक-से-अधिक आदमियोंके आगे जीवनदासकी पोल खोलना चाहता था।

लेकिन और बातें मेरे पूर्व निर्धारित क्रमके अनुसार हुईं। पाँच बजे मैंने बोलनेकी अनुमति मांगी जो आसानी से मिल गयी। मैं ५—७ मिनट तक जनताको इधर उधरकी बातोंमें बहलाता रहा कि दूरसे वही लाल ओहार वाली डोली आती दिखायी पड़ी। उसी समय मैंने अपनी बातोंकी नकेल घुमा दी और कहा—'भाइयो! अबलाश्रमको दृढ़तर आर्थिक नींव पर स्थापित करनेका आपका प्रयास परम स्तुत्य है पर सर्वप्रथम हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि ऐसी संस्थाओंमें कार्य्य करने वाले सज्जन सर्वथा सच्चरित्र हों। वे आपके बाबू जीवनदासके सदृश न हों जो जाहिरा तो महिला समाजके अन्यतम् हितैषी बनते हैं पर छिप-लुक कर न जाने कितनी सती स्त्रियोंका सर्वनाश कर डालते हैं।'

मेरे मुँहसे यह बात निकलनी थी कि सैकड़ों

आदमी खड़े होकर 'झूठ है—झूठ है' चिल्लाने लगे। मैंने सबको शान्त होनेका इशारा किया और कहा—'मेरा अगर विश्वास न हो तो वह देखिये सामने सड़क पर एक डोली जा रही है, उसमें बाबू जीवनदासजी स्वयम् हैं। जाकर उनसे पूछिये कि आप छिपकर कहाँ जा रहे हैं।'

यह सुनकर कुछ नवयुवक उठ खड़े हुए और सड़क-की ओर दौड़ पड़े। मैंने देखा कि मुरारी भी पीछे-पीछे दौड़ा जा रहा है।

उन लोगोंने सड़कपर जाकर डोली ढोने वाले कहारोंको ललकारा। वे डरकर खड़े हो गये। जान पड़ता है कि उन लोगोंके पूछनेपर बेचारे कहार कोई संतोष-जनक उत्तर न दे सके जिससे उन लोगोंका संदेह और दृढ़ हो गया। उन्होंने कहारोंको अपने साथ आनेका इशारा किया और डोली समेत सभामें आ खड़े हुए।

एक नवयुवकने डोलीका पर्दा खिसकाकर भीतर झाँका; फिर उसने पर्दा खींचकर फेंक दिया। सब किसी-ने देखा कि डोलीमें बाबू जीवनदासजी बैठे हैं।

यही समय था जब मैं अपनी सफलता पर खुश होता पर आश्चर्यने बीच ही में मेरी खुशीका गला टीप दिया।

मैंने देखा कि जीवनदासके चेहरे पर घबराहट या परेशानी की एक धुंधली रेखा भी न थी। वह बड़ी शान्ति और गम्भीरताके साथ डोलीसे उतरा और सभामंचकी ओर बढ़ा। उसपर मेरे पास ही खड़ा होकर वह बोला—'सभापति महोदय और उपस्थित सज्जनो! मुझे यह देख कर बड़ा सन्तोष हुआ और इसके लिये मैं हृदयसे धन्यवाद देता हूँ, कि आपमेंसे कुछ लोग मेरे स्वागतमें सड़क तक दौड़ गये। मैं तो आही रहा था। इसके लिये मैं क्षमा चाहता हूँ कि इधर कई दिनसे बीमार होनेके कारण हवासे बचनेके लिये मुझे डोलीमें पर्देके अन्दर यहाँ आना पड़ा।'

यह बात इतनी सरलता और स्वाभाविकतापूर्वक कही गयी थी कि फ़ौरन लोगोंके दिलमें बैठ गयी। मैं एक नीच और ढीठ परनिन्दकके रूपमें देखा गया। हज़ारों आँखें मेरी ओर क्रोध और घृणाकी लपटें फेंक रही थीं।

सुना है कुछ ऐन्द्रजालिकोंको हवामें हवा बनकर मिल जानेकी शक्ति होती है। क्या ही अच्छा होता यदि इस समय मैं भी किसी ऐसी शक्तिसे लाभ उठा सकता। यदि मैं बाबू जीवनदासकी डोलीमें ही पर्देके भीतर छिप सकता तो कितने सुखका अनुभव करता!

इसी समय सभामें कोई बोल उठा—'बाबू जीवनदास जी ! यह शख्स अभी आपके चरित्रपर लाञ्छन लगा रहा था ।'

जीवनदासने फ़ौरन जवाब दिया—'दोष आप लोगोंका है । मेरी अवस्था इस समय पचासके निकट है । मैं जब नवयुवक था उस समय समाजके सच्चे सेवकोंपर कोई किसी प्रकारका आक्षेप करनेका साहस करता था तो उसे तत्काल दण्ड दिया जाता था । उस समय ऐसे लोगोंके लिये ५० जूतोंकी शरह खुली हुई थी ।'

मुझे ऐसा जान पड़ा कि वहाँ अधिकांश लोग इस दण्डविधानके पक्षमें थे । पचासकी संख्याको कुछ लोग कम समझते रहे हों पर जूतोंवाली बात प्रायः सबको पसन्द आयी । पासके कुछ लोगोंको जब मैंने अपने जूतोंका फ़ीता खोलते देखा तब मुझे इस सम्बन्धमें कोई सन्देह न रह गया ।

अब वहांसे खिसक जाने ही में मुझे अपनी खैरियत जान पड़ी । लेकिन मैं एक क़दम भी आगे न बढ़ा हूँगा कि लोग मेरी ओर दौड़ पड़े । जिसकी ओर निगाह जाती थी उसीको हाथमें जूता लिये देखता था । मेरे आगे पीछे

जूतोंकी प्रदर्शिनीसी दिखायी पड़ने लगी—नया और पुराना, ब्राउन और ब्लैक, किड और क्रोम, चमरौधा और चप्पल, पम्प और डरबी। इनकी सिर्फ़ सूरत देखकर मैं पंचत्वको प्राप्त होने लगा।

एक नवयुवक मेरी ओर बढ़ा। उसके हाथमें फुलबूट था जिसे वह मुगदरकी तरह घुमा रहा था। इसी नव-

युवकने बाबू जीवनदासकी डोलीपरसे पर्देको उतार फेंका था। उस समय मैंने उसके उत्साहकी मनही मन प्रशंसा की थी। इस समय मैं उसके उत्साहको दिलोजानसे कोस रहा था।

वह मेरे पास आया। उसका फुलबूटवाला हाथ ऊपर उठा। मैं सोच ही रहा था कि देखूँ तड़ाक का शब्द मेरे शरीरके किस भागपर होता है कि किसीने पुकारा 'ठहरो'।

नवयुवकका हाथ रुक गया। सबकी दृष्टि ठहरो पुकारनेवाले व्यक्तिकी ओर दौड़ गयी। मैंने देखा कि वह व्यक्ति मुरारी था। उसने बाबू जीवनदाससे कहा—'जूतोंसे इस आदमीकी काफ़ी मरम्मत न होगी। मेरे पास यह मोटी छड़ी है। इसके दो-चार हाथ इसके सर या पीठपर लगें तो जल्दी न भूलेगा। यह छड़ी आपकी डोलीमें थी। मैं इसी कामसे उठा लाया हूँ।'

बाबू जीवनदासने हँसकर उत्तर दिया—'मैं बीमार आदमी हूँ, मेरी छड़ी टूट जायगी तो मुझे तकलीफ़ होगी। इस समय लोगोंको जूते हीसे काम लेने दीजिये। मेरी छड़ी डोलीमें रख आइये।'

मुरारीने कहा—'अच्छी बात है, जैसी आज्ञा। मैं छड़ीको जहाँकी तहाँ रख आता हूँ। और इस ख़तको क्या करूँ? आप डोलीसे उतर रहे थे तब यह आपके जेबसे गिर पड़ा था।'

गो मैं उस समय पागलसा हो रहा था तब भी इतना मैंने देख ही लिया कि ख़तका नाम सुनते ही जीवनदासका चेहरा फ़क्क हो गया। उन्होंने घबरायी हुई आवाज़से कहा—'उस ख़तको फाड़कर फेंक दीजिये। उसमें कुछ नहीं है।'

मुरारीने जवाब दिया—'जी नहीं ! खत ज़रूरी मालूम पड़ता है । उर्दूमें लिखा हुआ है और......

'आप फाड़कर फेंक दीजिये, लाइये मैं फाड़ दूँ ।'

'कैसे फाड़कर फेंक दूँ ? ज़रूरी खत है । नीचे जैनब का हस्ताक्षर है ।'

जैनबके नामका भीड़पर बड़ा प्रभाव पड़ा । शहरमें एक ही जैनब थी जो अपने कारनामोंसे काफ़ी विख्यात हो चुकी थी । उसने बाबू जीवनदासको क्यों खत लिखा ?

मुरारीने कहा—'मैं खत पढ़कर सुना देता हूँ । तत्पश्चात् यदि आप फाड़ने कहियेगा तो फाड़ डालूँगा ।'

बाबू जीवनदास खत छीननेके लिये मुरारीकी ओर लपके पर वह पीछे हट गया । कुछ दूर पर खड़े होकर उसने कहा—'मैं खत पढ़ता हूँ, सुनिये—

जनाबमन, तसलीम

आज सुबह ज़रासी निगाह चूकी थी कि वह छतपर चढ़ गयी । कूदकर खुदकुशी करने जा ही रही थी कि मैं पहुँच गयी । बड़ी खैरियत हो गयी, नहीं तो न जाने क्या आफ़त बरपा होती ।

आपने एक अजीब बला मेरे गले मढ़ दी है । उसे

राहपर लाना मेरे मानकी बात नहीं है। वह अपनी अस्मत और इज़्ज़तके लिये जान तक देनेको तय्यार है।

मेरी राय है कि आप उसे अपनी राह जाने दें। उसे आफ़तकी पुड़िया समझिये। उसे कब्ज़ेपर चढ़ाना इमकानके बाहर है। मान लिया वह हसीन है पर उसीसे तो हसीनोंका खातमा नहीं हो जाता।

मुझे डर इस बातका है कि मैं अभी दो सालके बाद जेलसे रिहा हुई हूँ। अब अगर कोई नया गुल खिला तो इस बार लम्बी मीयादके लिये लाद दी जाऊँगी। इसलिये आपसे इल्तिजा है कि अपनी बला आप खुद सँभालिये और मुझे छुट्टी दीजिए।

आपकी खैरख्वाह
जैनब

इस खतके खतम होनेपर लगभग ३० सेकेण्ड तक सभामें ऐसा सन्नाटा रहा कि अगर एक आलपीन भी गिरती तो उसकी आवाज़ सुनायी पड़ जाती। पर इसके बाद ही हो-हल्लाका वह तूफ़ान उठा कि जिसका बयान नहीं। जूते जो मेरे लिये लोगोंके पैरोंसे निकल चुके थे वे अब बाबू जीवनदासके सरपर यों बरसे जैसे खेतमें ओले बरस रहे हों। वे अपनी डोलीमें उठाकर अस्पताल गये।

जो कुछ हुआ उसकी मुझे खुशी है। जीवनदास-से हीनकर्म्माको यही दण्ड मिलना चाहिये था। समाजके हीरको चालनेवाले कीड़ोंको पैरोंसे कुचल ही डालना उचित है। जीवनदासजी तो खैर अस्पतालमें अपने पापों का प्रायश्चित करके बच गये।

मुझे एक बातका दुःख अवश्य है। मुरारी जब मिलता है मुझे बारहसिंघेकी दुम पुकारता है पर मैं उसे च्छा होते हुए भी चुकन्दरकी जड़ नहीं पुकार सकता।

७

चिकित्सा का चमत्कार

रियासत थी, रजाई थी; मंत्री थे, मुसाहब थे; रानियाँ थीं, रखेलियाँ थीं। राजा सिरताजसिंहको सब कुछ था; अगर थी नहीं तो एक बुद्धि।

अवस्था इस समय पचासके पार थी। बुढ़ापा चढ़ रहा था, शरीर उतर रहा था। मगर अब भी बिना विलासिताका बाजार गर्म हुए दिल ठण्डा नहीं होता था।

पर लाचारी सी हो चली थी। मनकी हुंडियोंको सकारनेमें शरीर असमर्थ हो रहा था। बल घट रहा था,

व्याधियाँ बढ़ रही थीं। लेकिन जब तक चिकित्साका चाबुक काम दे तब तक जीवनको सुधारकी ओर मोड़नेकी क्या जरूरत थी !

तार पर तार दिये गये। दिल्लीसे एक हकीम, काशी-से एक वैद्यराज, कलकत्तेसे एक डाक्टर, तीनों साथ ही आये।

राजा साहब अपने खास कमरेमें मसनदके सहारे बैठे हैं। तीनों चिकित्सक सामने हाजिर हैं। राजा साहब इस असमंजसमें पड़े हैं कि पहले किससे बातें करूँ। डाक्टर अंगरेजी टोप लगाये है, पहले उसीसे बातें करना ठीक होगा।

डाक्टरको इशारा हुआ। वह आगे आया। राजा साहबको अच्छी तरह देखभाल कर बोला—'मेरी राय है कि आपको एक बढ़िया टानिक खिलाऊँ।'

राजा साहब टानिकका नाम सुनकर खिल पड़े। बोले—'बस डाक्टर साहब ! यही मैं भी चाहता हूँ। कोई बहुत बढ़िया टानिक मुझे दीजिये।'

'मैं आपको रेडियम खिलाऊँगा।'

राजा साहब केवल इतना जानते थे कि रेडियम

किसी अत्यन्त मूल्यवान चीजका नाम है। तब तो वास्तव में लाभकारी भी होगा, क्योंकि क़ीमती होनेका गुण सभी अच्छी औषधियोंमें पाया जाता है। उन्होंने बड़े हर्षोल्लास के साथ पूछा—'क्यों डाक्टर साहब! रेडियम बहुत बढ़िया टानिक है?'

'बहोत बढ़िया। देखिये घड़ी एक निर्जीव चीज़ है पर रेडियमके सेवनसे उसका चेहरा चमकने लगता है।'

यह बात राजा साहबके दिलमें बैठ गयी। रेडियम खाया जायगा, ज़रूर खाया जायगा, सेरों खाया जायगा। स्वाद अच्छा हुआ तो दूधमें चीनीके स्थान पर उसीको··

राजा साहबने कहा—'बस बस ठीक है! मैं रेडियम का सेवन करूंगा। लेकिन ज़रा हकीम साहबसे भी बातें कर लूँ।'

हकीम साहब उँगलियोंसे दाढ़ीमें कंघी करते हुए आगे आये। उन्होंने राजा साहबकी नब्ज़ देखी, हाल पूछा, कुछ गौर किया; फिर कहा—'मैं आपको आबे-शबाब पिलाऊँगा।'

'आबे-शबाब क्या चीज है, हकीम साहब?'

'एक अरक़ है। सत्तरके बुड्ढेको सत्रहका पट्ठा बना

देता है। जिस्ममें फ़ौलादियत और नसोंमें बिजली भर देता है। इसका नुसखा मेरे वालिद बुज़ुर्गवारके परदादाको हकीम लुक़मानके नवासेसे दस्तयाब हुआ था।'

'सच कहिये!'

'जी हाँ! और इस अरक़को खींचनेमें मामूली कोयले या लकड़ीसे काम नहीं लिया जाता। इन्सानके जिस्मकी आँचपर यह अरक़ उतरता है।'

'अरे! वह कैसे?'

'भबकेके ऊपर और नीचे ऐसे लोग गाँज दिये जाते हैं जिन्हे १०६ या १०५ डिगरीका बुखार चढ़ा हो।*

राजा साहबने मनमें सोचा कि जाननेवाले मिलें तो कैसी कैसी महौषधियोंका पता चल सकता है। उन्होंने पूछा—'तो क्यों हकीम साहब! आबे-शबाब बड़े फ़ायदेकी चीज़ है?'

---

* स्मालेट नामक एक लेखकका भाव

'जनाब ! मैं क्या अर्ज करूँ ! मेरे हाथमें यह छड़ी आप देख रहे हैं ? इसे मैंने मिट्टीमें गाड़कर चार दिन आवेशाबावसे सींचा। पाँचवें दिन इसमें हरे-हरे पत्ते दिखायी पड़ने लगे।'

यह सुनकर राजा साहब हक्काबक्का हो गये। यह असर! यह तासीर! इस अरक़में तो सदा डूबे रहना चाहिये। बोले—'हकीम साहब ! मैं इस अरक़को आप जितना बतायेंगे उसका दसगुना पिउँगा। ज़रा वैद्-जीसे भी बातें कर लूँ।'

अब वैद्यराजकी बारी आयी। उन्होंने नाड़ी परीक्षाके लिये राजा साहबकी कलाईपर इस तरह हाथ रक्खा मानो वहाँ कुल कितने रोमकूप हैं इसकी ठीक संख्या गिन रहे हों। कुछ देरके बाद उन्होंने कहा—'श्रीमान् ! मैंने यह निश्चय किया कि आपको स्वर्ण भस्म खिलाऊँ।'

राजा साहबने मुँह बिचका कर कहा—'वैद्जी ! मैंने स्वर्णभस्म तो कई बार खाया है। कुछ लाभ नहीं हुआ।'

'आपने स्वर्णभस्म नं० २ खाया होगा। मैं आपको स्वर्णभस्म नं० १ खिलाऊँगा। तब तो आपका रोग नौ दो ग्यारह होगा।'

ठीक है ! बस यही बात थी ! बिना नं० ९ के नं० २ कर ही क्या सकता था ? आज राजा साहबको इसका रहस्य मालूम हुआ । बिना जानकारके भेद कौन बताये ? राजा साहबने खुश होकर पूछा—'महाराज ! स्वर्णभस्म नं० ९ बनता कैसे है ?'

'श्रीमानसे क्या निवेदन करूँ ! इसके बनानेकी क्रिया इस समय भारतवर्षमें मेरे सिवा कोई जानता ही नहीं । पहिले तो एक ऐसी गायके गोबरके कंडे बनाये जाते हैं जिसने

सालभर तक सिवाय अखरोटके कुछ खाया न हो। ये कंडे उस अङ्गारेसे सुलगाये जाते हैं जो किसी भूखे चकोरकी चोंचसे छीना गया हो । इस आगमें वह सोना भस्म किया जाता है जो किसी ब्राह्मणकी मुट्ठीसे किसी देवस्थानमें गिर पड़ा हो और साल भर तक उसी स्थानपर पड़ा रह गया हो, किसीने उठाया न हो ।'
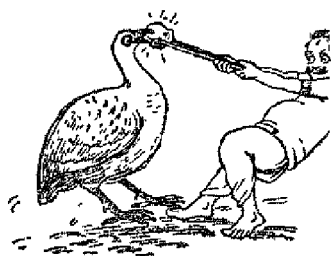
'यह भस्म बहुत बलकारक होता है ?'

'बलकारक होनेकी बात न पूछिये । कहा जाता है

कि अंगदने रावणकी भरी सभामें पैर रोपते समय इस भस्मका केवल ध्यान मात्र कर लिया था।'

× × ×

अन्तमें तय यह हुआ कि तीनों चिकित्सक रोक लिये जायँ और तीनोंसे एक साथ इलाज कराया जाय। सबेरे रेडियम, दोपहरमें आवेशबाब, सन्ध्या समय स्वर्णभस्म नं० ९।

८

कानों की खता

दस वर्षकी पुरानी नौकरी उसकी, और साहबने कहा इसे फौरन बर्खास्त कर दो। मैं दफ़्तरमें हेडक्लर्क था पर कारण पूछना मैंने उचित न समझा।

साहब हाकी खेलनेके शौकीन थे। मैं उनकी टीममें कभी-कभी गोल-कीपरी कर देता था। इससे मुझे मानते थे।

मैंने मौक़ा देखकर उन्हें समझाया। उन्होंने कहा अच्छा बर्खास्त मत करो, दस रुपया जुरमाना करके छोड़ दो।

बारह रुपयेके चपरासीपर दस रुपया जुरमाना बहुत

होता है। उस वक्त तो मैं कुछ नहीं बोला, उसकी नौकरी बचा लेना ही मैंने ग़नीमत समझी, लेकिन मैंने सोच लिया था कि फिर कभी साहबसे कह-सुन कर जुरमाना भी कम करा दूँगा।

उसी दिन शामको मुझे धन्यवाद देनेके लिये वह मकानपर आया। मैंने उससे पूछा—'तुमने क्या किया था कि साहब इस क़दर नाराज़ हो गये ?'

'क्या कहूँ सर्कार ! अपने कानोंका कसूर था। कल शामको साहब फ़ील्डमें अपने दोस्तोंके साथ बैठे हुए थे। मैं कुछ दूरपर था। मुझे पुकार कर उन्होंने हॉकीका बॉल (गेंद) लाने कहा। मुझे सुन पड़ा कि ह्विस्कीका बोतल मांग रहे हैं।'

'अरे ग़जब ! तो क्या तुम ह्विस्कीका बोतल लेकर वहाँ गये ?'

'जी हाँ।'

'भला उनके दोस्तोंने मनमें क्या सोचा होगा ? साहब ने उनसे कह रक्खा है कि शराब हाथसे वे छूते नहीं।'

'क्या कहू अपनी ग़लतीको। सर्कारने दया करके बचा लिया, नहीं नौकरीसे हाथ धो चुका था।'

उसके जानेपर मेरे दोस्तोंने हँसना शुरू किया। मुरारीने कहा—'अजीब अहमक़ है तुम्हारा चपरासी। हॉकीके बॉलको ह्विस्कीका बोतल सुनता है।'

'आदमी तो निकाल ही देने क़ाबिल था। तुमने नाहक उसे बचाया'—मोहनने कहा।

मैंने इसका उत्तर नहीं दिया। मुझे चुप देखकर मुरारीने पूछा—'क्या सोच रहे हो?'

मैंने कहा—'मैं यह सोच रहा था कि सात वर्ष हुए अगर मैंने भी ऐसी एक गलती न की होती तो आज लाखोंकी सम्पत्तिका मालिक बना चैनकी बंसी बजाता होता।

'क्या तुम भी हाकी माँगनेपर ह्विस्की लाते थे?'

'नहीं। मेरे चचा आसपासके जिलोंमें घीके सबसे बड़े अढ़तिया थे। घीमें मिलानेके लिये हजारों मन केवल चर्बी उनके यहाँ खप जाती थी। इस रोज़गारमें उन्होंने बड़ा पैसा बनाया। उन्हें संतान कोई नहीं थी। भतीजे कई थे। ऐसा मशहूर था कि अपना धन किसी भतीजेको छोड़ जायँगे। इसलिये भतीजोंकी आपसमें बड़ी लागडाँट थी। सब उन्हें खुश करनेकी कोशिश

किया करते थे। कोई उनके पैर दबाता, कोई उन्हें दिनमें दस बार प्रणाम कर जाता, कोई तरह-तरहकी सौगात भेजता।

'मैंने देखा कि मैं इस होड़में पिछड़ रहा हूँ। न मैं इतनी हाज़िरी बजा पाता था और न सौगात भेजनेके लिये पैसे जुटा सकता था। मैंने किया यह कि उनके घीकी तारीफ़में एक कविता छपा कर बाँट दी। कुछ पंक्तियाँ मुझे अभी-तक याद हैं—

(१)

ले लो यारो मेरा घी
खा लो इसको जीतेजी।
मिलना कठिन सरगमें भी
ऐसा है यह मेरा घी॥

(२)

गमका घर जब चढ़ी कड़ाही
जरैं परोसी तरसैं राही।
हो जो इस घीका संयोग
दाल भात हो मोहनभोग॥

(३)

बूढ़े अगर गये हों सठिया
खालें इसको भागै गठिया।
खाकर इसको कितने लुंज
हुए वीरवर तेजोपुंज॥

(४)

बेचके यारो बोरिया-बस्तर
ले लो हमसे एक कनस्तर।
मरैं डाक्टर वैद हकीम
खाकर तुम हो जाओ भीम॥

इसे पढ़ना था कि चचा साहब रीझ गये। इसके बाद और भतीजोंकी एक न लही। मेरा मान-महत इतना बढ़ा कि मैं चचाके साथ ही रहने लगा।

मेरे दिन बड़े चैनसे कटने लगे। खाना सोना और सिनेमा देखना, यही काम मेरे ज़िम्मे थे। मैं तीनों काम बहुत जी लगाकर करता था।

लेकिन देवताओंसे मेरा यह सौभाग्य नहीं सहा गया। मेरा दुर्दैव अपना सोंटा सम्हालने लगा।

पिकचर पैलेसमें 'भाग्यका फेर' नामक रङ्गीन फ़िल्म दिखायी जा रही थी। जो देखकर आता वही वाहवाह करता। आज उसका आख़िरी दिन था, मैं पहले नहीं देख सका था।

छः बज गया था। साढ़े छः से 'शो' शुरू हो जाता था। मुझे देर तो योंही हो गयी थी। मैं जल्दी जल्दी क़दम बढ़ाता हुआ चचा साहबके कमरेके सामनेसे गुज़रा। उन्होंने पूछा शहर जा रहे हो ? मैं बाहर हीसे बोला जी हाँ। उन्होंने कहा अच्छा ज़रा सुन लो, मेरा एक काम करते आना।

देर पर देर ! इसी वक्त इन्हें भी रोकना था। ख़ैर मैं उनके कमरेमें गया और झटपट उनकी सुनकर भागा।

नौ बजे शो के समाप्त होनेपर मैं घर लौटने लगा। आधी दूर आनेपर याद पड़ा कि चचा साहबने मुझे शहर-से अपने लिये कोई चीज़ लानेका आदेश दिया है। हाँ ठीक है, उन्होंने कहा था कि नाल लेते आना। देसी जूते पहनते हैं, उन्हींके लिये नाल चाहते होंगे। मैंने उनके जूतोंकी एँड़ीमें नाल लगे देखे भी थे।

ज़रासी चीज़के लिये मुझे आधी दूरसे फिर शहर लौटना पड़ा। वहाँ जूतेके नाल ख़रीद कर मैं घर आया।

चचा साहब अपने कमरेमें लेटे हुए हुक्का पी रहे थे। मैंने उनके आगे उनकी चीज़ रख दी और पूछा—'देखिये ये ठीक हैं?'

उन्होंने मुझे सरसे पैरतक बड़े गौरसे देखा मानों थानेमें मेरा हुलिया लिखाने जा रहे हों। मैंने फिर पूछा—'देखिये ये ठीक हैं?'

'ये हैं क्या ?'

'आपने नाल माँगे थे, वही लाया हूँ।'

'अच्छा तो फ़ौरन तुम मेरी आँखोंसे ओझल हो जाव। इसी मिनट यहांसे हट जाव, नहीं तो मैं हाथ चला दूँगा। बद्‌माश कहींका ! मुझसे मज़ाक करता है ! मैं तेरा हमजोली हूँ ?'

वे देरतक नालायक़ और नामाक़ूल इत्यादि 'प्रेम-लपेटे अटपटे' शब्दोंकी बौछार मेरे ऊपर करते रहे। मैं सुनता रहा; और करता ही क्या ! दूसरे दिन उन्होंने मुझे घरसे निकाल बाहर किया।

मेरा क़िस्सा ख़तम होनेपर मुरारीने पूछा—'लेकिन तुम्हारा क़सूर क्या था ? चचा साहब किस बातपर नाराज़ हो गये ?'

मैंने कहा—'मेरे कानोंकी ख़ता थी। सिनेमा जानेकी जल्दीमें मैंने उनकी बात ठीकसे सुनी नहीं। उन्होंने माँगा था अपने हुक्केके लिये मुँहनाल; मैं लाया जूतेके नाल।'

१

दावत की अदावत

यह मैंने आज ही जाना कि जिस सड़कपर एक फुट मोटी धूलकी परत चढ़ी हो वह फिर भी पक्की सड़क कहला सकती है। पर मेरे दोस्त झूठ तो बोलेंगे नहीं। उन्होंने कहा था कि पक्की सड़क है, साइकिल उठाना, आरामसे चले आना।

धूल भी ऐसी वैसी नहीं। मैदेकी तरह बारीक होनेके कारण उड़नेमें हवासे बाजी मारती थी। मेरी नाकको तो उसने अपने बापका घर समझ लिया था। जितनी धूल

इस समय मेरे बालोंमें और कपड़ोंपर जमा हो गयी उतनीसे ब्रह्मा नामका बुडढा कुम्हार मेरे ही ऐसा और मिट्टीका पुतला गढ़ देता ।

पाँच मीलका रास्ता मेरे लिये सहराका रेगिस्तान
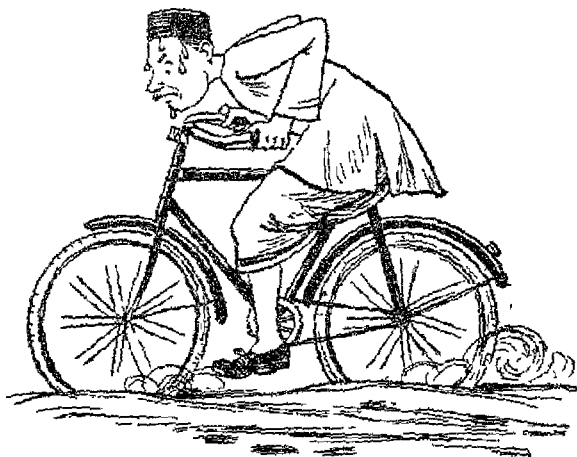
गया । मेरी साइकिल पग-पगपर धूलमें फँसकर खुद धूलमें मिल जाना चाहती थी । मैंने इतनी धूल फाँक थी कि अपने फेफड़ोंको इस समय बाहर निकाल कर देता तो देखनेवाले समझते कि सिमेन्टके बोरे हैं ।

खैर, किसी तरह सड़क खतम हुई और मैं लम्बी पगडण्डी तय करके उस बाग़के फाटकपर प

जिसमें आज मेरी मित्रमण्डली सुबहसे ही आकर टिकी थी।

फाटकपर खड़े होकर मैंने अपनेको झाड़ा-झटकारा। जरूरत थी फावड़ेकी पर मैंने हाथ हीसे अपने शरीरकी धूल हटायी।

मैं बिलकुल लस्त हो गया। धूलकी वैतरणी पार करनेके बाद यह बाग़ स्वर्गसा प्रतीत हो रहा था। हृदय धीरे धीरे आनन्दकी पेंग मारने लगा। बारह बज गया था, मित्रोंने रसोई तैयार कर ली होगी, मेरा इन्तेज़ार कर रहे होंगे। पता नहीं बाटियोंको लोगोंने घीमें तर कर रक्खी हैं या नहीं। मैंने कह तो दिया था।

बाग़में मैं दाख़िल हुआ। बीचमें एक बारहदरी थी। चण्डाल-चौकड़ी वहीं ठहरी होगी। मैं उसी तरफ बढ़ा। मनमें सोचता जा रहा था कि एक बार पहुँचते ही सबको खूब लताड़ूँगा कि दावत देनेकी आखिर यह कौनसी जगह थी। शहरसे इतनी दूर और ऐसी ख़राब सड़क!

लेकिन बारहदरीमें कोई दिखायी न पड़ा। किसी पेड़के नीचे सब होंगे। 'बहरी तरफ' का मज़ा पेड़ों हीके नीचे आता भी है।

मैंने सारा बाग़ छान डाला, कहीं किसीकी गंध भी न थी। आख़िर मामला क्या है? दूरपर एक माली कुछ काम करता दिखायी पड़ा। उसके पास जाकर मैंने पूछा—'क्यों भाई! आज सुबह शहरसे कुछ लोग यहाँ सैरके लिये आये थे?'

'नाहीं तौ'—उसने कहा।

'अरे मुरारी नामका कोई आदमी नहीं आया था? एकहरा बदन, साँवला रंग, गालपर एक बड़ासा मसा।'

'नाहीं, कोई नहीं आवा रहा।

'मुरली नामका कोई आदमी? लम्बा क़द, चपटी नाक, घूरपर पड़े हुए जूतेसा मुँह।'

'नाहीं'

'और माधो नामका?'

उसने भुँझला कर कहा—'नाहीं साहब! माधो नाम का भी कोई नाहीं आवा रहा; और मुन्नू, मँहगी, मँगरू, मेवा, मोहन, मुनेस्सर नामका भी कोई नाहीं आवा रहा।'

मैं अपना सर पकड़कर वहीं बैठ गया। मैं फिर बेवकूफ़ बना, इसी एक सालमें तीसरी बार।

पहली बार, गंगामें नावपर इन बदमाशोंने मुझे दावत-के लिये बुलाया और भाँग पिलाकर सोता हुआ छोड़कर

भाग गये। दूसरी बार, खुद सब खा-पीकर मुरारीके मकानपर आये थे, मुझे दावतके नामपर वहीं रोक रक्खा, पासके किसी कमरेमें जलते तवेपर पानीके छींटे दे-देकर मुझे भुलावा दिया कि खाना तैयार हो रहा है; अन्तमें रात बारह बजे मैं खाली पेट रोता-कलपता घर लौटा।

और आज यह तीसरी बार। गरमीका दिन, दो-पहरका समय, शहरसे कोसों दूर और ऐसी खराब सड़क!

मैंने उस मालीसे कहा—'ज़रा पाँच मिनटके लिये अपने कानोंमें उँगली तो डाल लो।'

'काहे?'—उसने चकित होकर पूछा।

'अपने दोस्तोंको मैं गाली दूँगा।'

'साहब, फजूल हमार बखत मत खराब करौ।'

'तुम कर क्या रहे हो?'

'इहै पेड़ हम उखाड़ रहा हैं।'

'लाओ मैं उखाड़ दूँ।'

मेरे एक झटकेमें पेड़ जड़से उखड़ गया। मैंने यह सोचकर ज़ोर लगाया था कि अपने दोस्तोंके कान उखाड़ रहा हूँ।

रोता-झींकता मैं उसी 'पक्की' सड़कसे लौटा। मैं था

साइकिलपर सवार पर यदि साइकिल ही मेरे ऊपर सवार होती तब भी उसे आगे बढ़ानेमें मुझे इससे अधिक ज़ोर न लगाना पड़ता। धूपकी तेज़ीके साथ-साथ हवा भी तेज़ हो गयी थी। धूलकी बहार इस समय मैं आँखोंसे कम, आँखोंमें ही अधिक देख रहा था।

साढ़े तीनके क़रीब मैं शहर पहुँचा। मैं थकावट और भूखसे मुर्दा हो रहा था पर इस समय मुझे सिर्फ एक धुन थी, मुरारीको पकड़कर पीटनेकी। वही ऐसी शरारतोंका आविष्कारक और सूत्रधार होता है।

मैं सीधे मुरारीके मकान पहुँचा। उसके छोटे भाईसे भेंट हुई। मैंने पूछा—'मुरारी है?'

'नहीं।'

'कहाँ गया?'

'मैं नहीं जानता।'

'मर गया हो तो साफ़-साफ़ बता दो, मैं हँसी-खुशी घर जाऊँ।'

'आप बहुत थके-मांदे जान पड़ते हैं। जल पीजियेगा?'

'मैं इस समय मुरारीके खूनका प्यासा हूँ। आये तो उससे कह देना।'

पास ही में मुरलीका मकान था। वहाँ गया, वह भी न मिला। माधोसे भी भेंट न हुई। मैं समझ गया कि सब-के-सब जान-बूझकर कहीं छिपे हुए हैं। यह तो वे सब जानते ही रहे होंगे कि इस समय मैं बनैले सूअरसे भी ज्याद: खतरनाक हो रहा था।

मैं अपने मकानकी ओर चला। रास्तेमें पं० नेकीराम-से भेंट हो गयी। वे इसी जिलेमें बी० एन० डबल्यू० रेलवे के राहुलगंज नामक स्टेशनके स्टेशनमास्टर हैं। मेरा कुछ एहसान उनके ऊपर था, इससे मेरा लेहाज़ करते थे।

नमस्कार प्रणामके बाद मैंने पूछा—'कहिये कहाँ जा रहे हैं?'

'दो महीनेकी छुट्टी मैंने माँगी थी जो मंजूर हो गयी है। एक हफ़्तेमें घर जानेवाला हूँ। आज कुछ सामान खरीदने शहर आया था। आप तो कभी आते ही नहीं, कई बार प्रार्थना की कि एक रात वहाँ बसेरा कीजिये।'

'अच्छा आऊँगा। हो सका तो आपके जानेके पहले ही आऊँगा।'

उस समय मैं भूखा-प्यासा अधिक बातें नहीं कर सकता था। मैं किसी तरह गिरता-पड़ता घर पहुँचा।

तीन दिन तक मुरारी, मुरली, माधो या मोहन किसी-की सूरत न देख पड़ी। चौथे दिन सबके सब साथ ही मेरे मकानपर आये। पूर्व इसके कि मेरा पारा चढ़े उन सबने हँसना शुरू किया और ईश्वर झूठ न कहलाये, पन्द्रह मिनट तक लगातार सब हँसते रहे। मैं खड़ा दाँत पीसता रहा।

मुरारीने हंसते हुए कहा—'देखो, जब तक तुम हम लोगोंको एक दावत न दे लोगे तब तक हम लोग तुम्हें इसी तरह बेवकूफ़ बनाकर छकाया करेंगे।'

किसी तरह अपना गुस्सा पीते हुए मैंने कहा—'अपने घर पर तो मैं तुम लोगोंको दावत दे नहीं सकता मेरी स्त्री तुम लोगोंको समाजकी तलछट समझती है।'

'अच्छा! बाहर कहीं।'

'राहुलगंज चलोगे? छोटी लाइनसे तीन स्टेशन है यहाँसे। बड़ा रमणीक स्थान है। वहाँके स्टेशन मास्टर मेरे मित्र हैं। दावतका सारा प्रबन्ध कर रक्खेंगे।'

मेरी यह राय सबको पसन्द आयी। कल ही वहाँ चलनेकी पक्की ठहरी। दूसरे दिन शामको पाँच बजेकी गाड़ी से हमलोग रवाना हुए और छः बजते-बजते राहुलगंज पहुँच गये।

पं० नेकीराम मेरे साथ इतने आदमियोंको देखकर घबराये। उन्हें अलग ले जाकर मैंने उनसे कुछ बातें की। वे हँसकर चुप हो रहे। मैंने पूछा—'आप कल सुबह जा रहे हैं?'

'कल सुबह नहीं, बल्कि आज ही रातमें तीन बजे की गाड़ीसे। मेरे रिलीफ़* आ गये हैं! कलसे मेरी छुट्टी शुरू होगी।'

इधर मुरारी और मोहनमें यह बहस हो रही थी कि आसन कहाँ पर जमाया जाय। मुरारी प्लैटफ़ार्मपर ही दरी बिछाकर बैठना चाहता था। मोहनकी राय थी कि सामने कुँएकी जगतपर बैठक जमे। पर मैंने जो राय दी वह अपनी नवीनताके कारण सबको फ़ौरन पसन्द आ गयी।

स्टेशनके बगलमें और रेलकी पटरियोंसे कुछ फ़ासले पर पानीकी एक टंकी थी। जमीनसे क़रीब ४० फ़ुटकी ऊँचाई पर यह लोहेके खम्भोंके ऊपर बैठायी हुई थी। चढ़नेके लिये बगलमें लोहेकी ही पतली सी सीढ़ी लगी थी। टंकी ऊपरसे ढकी हुई थी।

---

* स्थानापन्न कार्यकर्ता

मैंने कहा कि क्यों न इसी टंकी पर चढ़कर बैठा जाय। चांदनी रातमें बड़ा मजा रहेगा। चारो ओरसे हवादार जगह, फिर नीचेसे पानीकी तरी। पासमें पेड़ोंका झुरमुट होनेके कारण कोई देखेगा भी नहीं।

बस यही ठीक रहा। मेरी सूझकी सबने तारीफ़ की। टंकी पर एक दरी बिछा दी गई और मित्र मण्डली उस पर जा धमकी। कहकहोंका बाजार गर्म हुआ, गुलछर्रे उड़ने लगे। दो-ढाई घण्टा तो देखते-देखते बीत गया। नौ बजे लोगोंकी राय हुई कि अब खाना आना चाहिये। ऊपर ही खाया जायगा। मैं प्रबन्ध करनेके लिये नीचे भेजा गया।

पं० नेकीराम अपने कमरेमें स्टेशन पर बैठे हुए थे। मैंने जाकर कहा—'पंडितजी! अब कोई आदमी दीजिये जो सीढ़ी गिरानेमें मेरी मदद करे। लेकिन पहले एक घड़ा पानी पीनेका ऊपर रखवा दीजिये, गरमीका दिन है।'

पंडितजीने अपना नौकर मेरे साथ किया। नौकर जिस समय घड़ेका पानी लेकर टंकी पर चढ़ा उस समय दोस्तोंने समझा कि अब भोजन भी आता होगा। लेकिन नौकरने उतर कर मेरी मददसे लोहेकी सीढ़ी खसकाकर नीचे गिरा दी।

मैं नीचे बैठ कर तमाशा देखने लगा। क़रीब आधा घंटा लोगोंने और इन्तज़ार किया। फिर यह राय हुई कि कोई नीचे उतर कर देखे कि भोजन पहुँचनेमें क्यों देर हो रही है। मुरारी नीचे आनेके लिये खड़ा हुआ।

पर यह क्या? सीढ़ी कहाँ ग़ायब हो गयी? मुरारीने झुककर देखा तो सीढ़ी जमीन पर गिरी हुई दिखायी पड़ी।

उस छोटी सी दुनियामें जो इस समय पानीकी टंकी पर स्थित थी एक क्रान्ति सी पैदा हो गयी। मुझे अभी तक इसका खेद है कि काफ़ी प्रकाश न होनेके कारण मैं अपने मित्रोंका चेहरा अच्छी तरह नहीं देख पाता था। शोर काफ़ी सुनायी पड़ रहा था।

मैंने नीचेसे पूछा—'क्या है मुरारी! क्या शोर कर रहे हो?'

'अजी यहाँकी सीढ़ी कैसे गिर गयी?'

'तुम जानो, मैं क्या जानूं।'

'बड़ी मुशकिल हुई। हम लोग नीचे कैसे उतरेंगे?'

'नीचे उतरनेकी ज़रूरत क्या है? अब सबेरे नीचे उतरना। बड़े भागसे ऐसा उच्च स्थान प्राप्त होता है।'

'मत फ़ज़ूल बको।'

'देखो चाँदनी खिली हुई है शीतल मन्द सुगन्ध बयार बह रही है। ऊपर निर्मल निरभ्र आकाशका वितान है, नीचे हरी-भरी पृथ्वी का प्रसार है।'
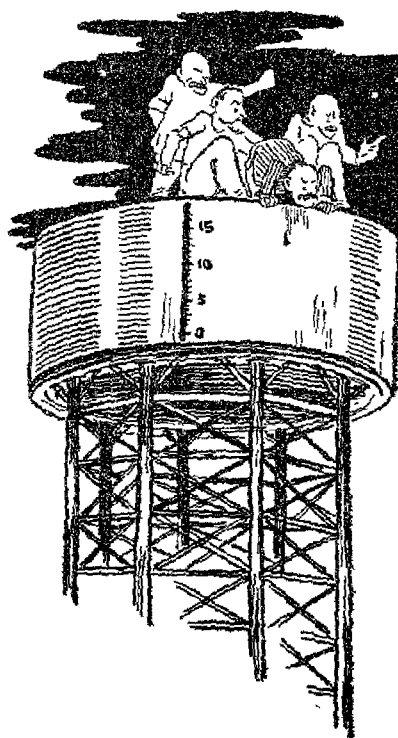
'अच्छा चुप रहो।'

'आदर्श ऋतु है, सुन्दर स्थान है, मनोरम दृश्य है। इससे अधिक क्या चाहिये? निश्चिन्त होकर प्रकृति का निरीक्षण करो।'

'तुम न मानोगे?'

'अच्छा कविता करो, या कहानी कहो, रात कट जायगी। जरा इसे तो सोचो कि इस समय तुम लोग स्वर्गके कितने निकट हो।'

मैंने पं० नेकीरामके नौकरसे कह दिया था। वह

एक हाथमें लालटेन और दूसरेमें मेरी थाली लिये पहुँचा। मैं वहीं बैठकर खाने लगा। मोहनने ऊपरसे पूछा—'अजी हम लोग क्या खायँगे ?'

मैंने कहा—'क्या बताऊँ ? बड़ा अफसोस है। इसी अफ़सोसमें मैं आज कुछ ज्याद: खा रहा हूँ।'

'मर जाव खाते खाते'—मोहनने कहा।

'यह कचौरियाँ बड़ी लाजवाब बनी हैं। कहो तो मैं एक टुकड़ा तुम लोगोंके देखनेके लिये ऊपर फेंकूँ ?'

इसका मुझे कोई उत्तर तो न मिला पर कुछ लोगोंके कराहनेकी आवाज मुझे साफ़ सुनायी दी। मैंने फिर कहा—'अजी इस राबड़ीकी खुशबूसे तो दिल हरा हो गया। तुम लोगोंतक इसकी खुशबू पहुँच रही है या नहीं ?'

इस बार भी मुझे कोई उत्तर न मिला। मैंने ऊपर अपनी निगाह उठायी। आपने अँधेरेमें किसी बिल्लीकी आँखें चमकती हुई देखी हैं ? ठीक उसी तरहकी चार जोड़ी आँखें टंकीके ऊपरसे मेरी ओर आग फेंक रही थीं।
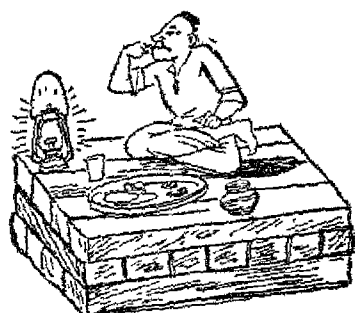
खाना खतम करके मैं वहांसे चलने लगा। चलते हुए मैंने कहा—'ऊपर एक घड़ा पीनेका पानी मैंने रखवा दिया है। खाली पेट ठण्डा जल पीना आयुर्वेदमें त्रिदोषनाशक माना गया है।'

थोड़ी दूर जाकर मैं फिर लौटा। एक बात मैं भूल गया था। मैंने कहा—'हाँ, एक बात और। पं० नेकीराम ने कहा है कि रातमें अगर किसीने शोर किया तो वे पुलिसको खबर दे देंगे कि कुछ बाहरी लोग बिला इजाज़त स्टेशनकी टंकीपर चढ़ गये हैं और ऊधम मचा रहे हैं।'

'तुम्हारा संहार हो'—मुरारी और मोहनने कहा।

'तुम्हारा सत्यानाश हो'—मुरली और माधोने कहा।

ग्यारह बज गया था। स्टेशनपर आकर मैं लेट रहा। राहुलगञ्ज ब्रांच लाइनका एक स्टेशन है। रातमें गाड़ियाँ नहीं आती जातीं। स्टेशनपर इसलिये शान्ति थी।

सुबह साढ़े तीन बजेकी गाड़ीसे पं० नेकीराम रवाना हो गये। मैं भी उसी गाड़ीसे रवाना हुआ। पण्डितजीने नये स्टेशन-मास्टरसे, जो उनके मित्र थे, चलते समय कह दिया कि उनके कुछ मेहमान पानीकी टंकीपर सो रहे हैं,

उन्हें सुबह छः बजेकी गाड़ीके समयसे सीढ़ी लगाकर उतार दीजियेगा।

घर आकर मैं कई दिनतक बाहर नहीं निकला। मुरारी वगैरः आते थे और हाथ मलकर लौट जाते थे।

१०

रात की बात

सोलह वर्षकी अवस्थामें उसने संसारकी सारी कमनीयता अपनी किसलय-सी कोमल कायामें बटोर कर रख ली। यौवनके बोझसे अलसायी हुई उसकी आँखें जिस समय मेरी ओर भरपूर उठ जातीं मेरा हृदय उस समय भीतर ही भीतर कलैया खाने लगता।

जबसे मेरे हृदय-पङ्कमें उसका प्रेम-रूपी पङ्कज खिला तबसे सच पूछिये तो मैं पशुसे आदमी हो गया। यह दूसरी बात है कि उसकी आँखोंका टोना मुझे अकसर आदमीसे लट्टू बनाये रहता।

मुझे उसकी शोखी, उसका अल्हड़पन, सब पसन्द था। अगर पसन्द नहीं थी तो उसकी ज़िद और उसकी मनमानी। कभी रूठ जाती तो मुझे नाकों चना चबवा देती।

पर एक रोज़ कुछ ऐसी अनहोनी हो गयी कि मैंने भी उससे रूठनेकी ठान ली। कारण यह था कि उस दिन शामको उसने मुझसे अपने तीन ख़त लिखवाये, एक अपनी भावजको और दो अपने संगकी पढ़ी हुई लड़कियोंको। हस्ताक्षर भर उसने किये, बाक़ी लिफ़ाफ़ा बन्द करने और स्टाम्प सटानेतकके काम मुझे करने पड़े।

ग़दरके भाव मेरे मनमें उसी समय उठ खड़े हुए। मैंने सोचा कि आज तो मैं उसके ख़त लिख रहा हूँ, कल उसके घोड़ोंके लिये घास करता नज़र आऊँगा। वह पति कैसा जो ऐसी बात सोचकर भी न रूठे! फिर जबतक रूठूँगा नहीं वह जानेगी क्या कि मेरे दिलको ठेस लगी है।

लेकिन उसे आँख दिखाना या उससे न बोलना मैं आत्महत्याके अन्तर्गत समझता हूँ। रूठनेसे मेरा अभिप्राय केवल इतना था कि अगर अपने दिलने समयपर जवाब न

दे दिया तो आज कुछ मिनटोंके लिये उससे जरा भारी हो रहूँगा।

रातके आठ बज चुके थे। मैंने खाना खाया और अपनी चारपाईपर जाकर लम्बा हुआ। मेरा लालची मन उसके आनेकी प्रतीक्षामें एक-एक पल गिनने लगा। उसके पैरोंकी पायल उसके आनेकी खुशखबरी कुछ दूर हीसे सुना दिया करती थीं। मेरे कान उसी ओर थे। पर आँखों के आगे मैंने एक धोखेकी टट्टी खड़ी कर ली थी। कोई काव्य-ग्रंथ था जिसे मैं योंही मुँहके सामने खोले हुए था।

उसके आनेकी आहट मिली। आँखोंने इस आहटकी टोहमें घूमना चाहा। मैंने उन्हें खींचकर सामनेके पन्नोंपर गड़ा दिया। बेचारी आँखें कलप कर रह गयीं।

वह आयी। लता-सी लहलहाती बल खाती वह कमरे में आयी। रोज तो उसके स्वागतमें मैं अपना जरूरीसे जरूरी काम छोड़कर उठ खड़ा होता था पर आज मैं हिला तक नहीं। किताब मेरी आँखोंके सामने डटी रही।

इच्छा तो हुई कि किताबको ऐसा फेकूँ कि सात समुन्दर पार जाकर गिरे। लेकिन मैंने सोचा कि रूठनेका

अभिनय इतनी जल्दी समाप्त हो जायगा तो उसके ऊपर असर ही क्या पड़ेगा।

मुझे उसकी ओर देखनेका साहस भी न हुआ। देखता तो मेरी सारी ऐंठ एक क्षणमें वहीं चली जाती जहाँ वामनने राजा बलिको भेज दिया है।

मेरा रुख देखकर वह सकपका-सी गयी। यह तो उसने फ़ौरन समझ लिया कि आज इस मूर्खको मुझसे रूठनेकी सूझी है। वह चुपचाप मेरी चारपाईपर बैठ गयी।

लेकिन कबतक! रूपके गर्वसे पोसा हुआ चुलबुलापन कहीं देरतक ग़म खा सकता है? मैंने देखा कि उसकी उँगलियाँ मेरे शरीरके उन्हीं स्थानोंपर थिरक रही हैं जहाँ मुझे गुदगुदी अधिक लगती है। दो मिनटमें तीन बार उसकी गुदकार हथेलियोंने मेरी आँखें मूँद दीं। अन्तमें किताब भी उसने मेरे हाथोंसे छीन ही ली।

अब क्या! अब तो आँखोंकी बन आयी। शहदपर मक्खी जिस तरह टूटती हैं उसी तरह वे उस रूप-सुधापर टूटीं।

कैसी सूरत उसने पायी है भगवान्! 'तरुनाई और सुघराई' का वह शरबत उन गालके कटोरोंमें छलकता है कि देखते आँखें तर हो जाती हैं। विधाताकी डायरी कोई

देखे तो पता चले कि उसे बनानेमें उनका कितना समय सर्फ हुआ है। मैं उनका परीक्षक होता तो उनका सिर्फ यह काम देखकर उन्हें सौमें सवा सौ नम्बर दे देता।

मेरी ऐंठकी धज्जियाँ उड़ चुकी थीं। मैं सोच रहा था कि प्रेममें पगी हुई कोई अत्यन्त मीठी बात कहूँ कि वह बोली—'आप कविताकी पुस्तक क्यों पढ़ रहे थे?'

मैंने कहा—'अब न पढ़ूँगा। जब परमात्माकी सबसे सुन्दर कविता एक कामिनीके रूपमें मेरे सामने बैठी है तब.............

'नहीं सच कहिये। आप कविताकी पुस्तक क्यों पढ़ते थे? क्या आपको यह आशा है कि कविता पढ़कर आप अगले सौ जन्मोंमें भी कभी कवि हो जायँगे?'

मुझे उसकी यह बात बड़ी लगती-सी जान पड़ी। मैंने कहा—'तुम्हें मालूम होना चाहिये कि मेरे पिता जी एक बहुत बड़े कवि थे। मामूली बोलचाल तक वे कवितामें करनेकी शक्ति रखते थे। मुझे अच्छी तरह याद है कि छुटपनमें जब मैं उनकी टोपीमें गोंददानी लुढ़का कर भागा था तब मुझे पकड़नेके लिये वे मेरे पीछे मीलों तक दौड़े थे और कहते जा रहे थे—

रहु रे बालक सत्यानासी
पकड़ लगाऊँ लात पचासी।
टोपीमें ढरकाया गोंद
धर पचकाऊँ तेरी तोंद।

'तो पिता जी ने अपना पचासी वाला संकल्प पूरा किया या नहीं ?'—उसने बड़ी दिलचस्पीके साथ पूछा।

मैंने उसकी बात अनसुनी करके कहा—'पिता जी कितने बड़े कवि थे इसका कुछ अनुमान तुम इस बातसे कर सकती हो कि उनके मरनेके बाद मुझे उनकी एक नोट बुकमें केवल क़ाफ़ियोंके हज़ारों जोड़े लिखे हुए मिले। जैसे चन्दा फन्दा, जल्दी हल्दी, रुक्का हुक्का, उल्लू चुल्लू, चूल्हा दूल्हा, अमला गमला, पागल छागल, चिरकुट बिसकुट..................

'कृपया बस भी करिये।'

'कहनेका तात्पर्य्य यह है कि मैं ऐसे पिताका पुत्र हूँ। तुम अगले सौ जन्मोंकी कहती हो, मैं इसी जन्ममें एक अच्छा खासा कवि हूँ।'

'अच्छा, मुझे यह नहीं मालूम था। जरा अपनी कोई कविता सुनाइये।'

'पाँच मिनटका समय दो। अपने हृदयकी कड़ाहीमें गरमागरम तल कर तैयार कर दूँ।'

'वाह! कविता न हुई बूटकी घुँघनी हुई। अच्छा तैयार करिये, जरा बानगी देखूँ।'

दो मिनट मैं सोचता रहा। विषयकी खोजमें मुझे दूर नहीं जाना था, केवल कुछ शब्दोंको जोड़-तोड़ कर एक स्थान पर चुन देना था। मैंने कहा, लो सुनो—

पलँगा पै पौढ़ि पढ़ै दे प्रिया पुस्तक मोहिं
बावरी सी बार-बार बार मेरे नोच मति।
पन्ना पाँच पलटि पलोटूँ पाँय तेरे भटू
प्रीतम-पियारी नारी है तू महा पोचमति॥

उसकी भौंहें चढ़ी हुई देख कर मैं सहम गया। अपनी कविताका शेष भाग घोंट कर मैं उसकी ओर सशंक देखने लगा। उसने पूछा—'आपने मुझे पोचमति क्यों कहा? मैं पोचमति हूँ?'

यह एक नया तितिम्मा पैदा हुआ। तुक मिलानेमें भी आफ़त! मैंने अत्यन्त विनय पूर्वक निवेदन किया—'अजी, दुलारमें आदमी न जाने क्या-क्या कह डालता है।'

'मैं दुलारमें आपको बेवकूफ कह दूँ तो आपको कैसा लगे ?'

यह कह कर वह उठ खड़ी हुई और जाने लगी। मैंने गिड़गिड़ा कर कहा—'प्यारी ! थूक डालो इस गुस्सेको। आओ मिल बैठें। माफ कर दो मुझे।'

'नहीं मैं पोचमति हूँ। मैं जाती हूँ।'

मैंने लाख कोशिश की पर मेरे रोके वह न रुकी। अपने कमरेमें जाकर उसने भीतरसे अरगल चढ़ा लिया।

और मैं ? मैं सूने कमरेमें और सूनी चारपाई पर पड़ा अपनेको कोसने लगा। चोट लगनेका डर न होता तो पलंगकी पाटीपर अपना सर दे मारता।

जी न जाने कैसा-कैसा होने लगा। नींद इस समय मुझसे कम-से-कम दो हजार योजनकी दूरीपर थी। पहाड़-सी रात सामने पड़ी थी। रातमें अकेले डर लगेगा तो किसका हाथ अपने सीनेपर रख कर दिलकी धड़कन बन्द करूँगा ? सोचा था कि कभी वह अपने पिताके घर जाने लगेगी तो मैं भी उसके साथ-साथ वहाँ चला चलूँगा; सो आज अपने ही घरमें यह विछोह !

नहीं नहीं ऐसा क्या ! चलूँ उसे मनाऊँ। थोड़ी देरमें जब क्रोधका ताप घटेगा तब आप ही कविके शब्दोंमें 'हरुए-हरुए गरुए' लग जायगी।

उसके कमरेका दरवाजा तो भीतरसे बन्द था पर खिड़की का जँगला खुला हुआ था। मैं वहीं जाकर खड़ा हुआ। वह भीतर एक कोच पर पड़ी हुई थी। मैंने उसे सुनाकर एक बड़ी लम्बी साँस ली। उसने भी समझा होगा कि कमरेके बाहर रेलका कोई बड़ा इंजिन अपना

फ़ालतू स्टीम फेंक रहा है।

लेकिन वह हिली तक नहीं। अपनी ज़िन्दगीकी तमाम साँस अगर मैं इसी समय लम्बी साँसोंके रूपमें ले डालता तब भी शायद वह न हिलती। मैंने सोचा कि लम्बी साँसोंका क्रम तो जारी रक्खूँ पर साथही कुछ

आरज़ू-मिन्नत, कुछ अनुनय-विनय, कुछ रोना-धोना भी चलता रहे तो शायद असर अधिक पड़े।

उस समय आरज़ू-मिन्नतके नाते मैंने जो कुछ कह डाला उसका संग्रह अगर कभी दस-बारह भागोंमें प्रकाशित होगा तो संसारको आश्चर्य्य-चकित कर देगा। पहले तो मैंने उसे उन सब नामोंसे पुकारा जो वैदिक कालसे लेकर आज तक अपनी स्त्रीको प्यारके साथ पुकारनेके लिये बनाये गये हैं। इसके बाद क्षमा-याचना की जितनी रीतियाँ प्रचलित हैं—सिवाय नाक रगड़नेके—उन सबको मैंने बरता। फिर हँसाने की जितनी तद्‌बीरें हास्यरसाचार्य्यों द्वारा बतायी गयी हैं—सिवाय सरके बल खड़े होनेके—उन सबको मैंने करके देखा।

पर यह कहना कि मेरी इन बातोंका उसके ऊपर कोई असर पड़ा सरासर झूठ होगा। कमरेका दरवाजा न खुला न खुला न खुला। न वह खुद बाहर आयी, न मुझे उसने भीतर आने दिया।

अजीब झंझटमें अपनी जान पड़ी थी। ग्यारह बज रहा था, कब तक इस तरह ड्योढ़ीदारी करता रहूँगा? अपना कमरा उसके बिना खाने दौड़ता था। इधर खड़े

खड़े पैरोंने भी जवाब देना शुरू किया। क्या सारी रात इसी तरह खटाईमें पड़ेगी ?

चलूँ मुरारीसे राय लूँ। उससे यही पूछूँगा कि अगर तुम्हारी स्त्री अपना कमरा भीतरसे बन्द करके बैठ रहे और तुम्हारे लाख सर पटकने पर भी न खोले तो तुम उसे किस प्रकार—बिना समूचे घरमें आग लगाये—बाहर निकलनेके लिये मजबूर करोगे। मुरारी दाम्पत्य जीवन की ऐसी समस्याओंको आनन-फानन हल कर लेता है।

मुरारी उस समय ठीक बगलके मकानमें रहता था। उसकी छत मेरी छतसे सटी हुई थी। अपने घरके तिमंजिलेपर जिस कमरेमें वह रहता था वह मेरी छतके मुँडेरेसे दिखायी पड़ता था। मैंने दो एक बार अपनी छत पर खड़े होकर उससे बातें की थीं। आज भी वहींसे बातें करूँगा।

मैं अपनी छतपर चढ़ गया। गुलाबी जाड़ा पड़ने लगा था। चैतकी चाँदनी रात अब भींग चली थी रजनीका सम्मोहक स्वरुप आँखोंके सामने निखर कर खड़ा था। चाँदनी एक शुभ्र-वसना सुन्दरीकी तरह छतपर विहार कर रही थी।

मैंने मुँडेरेके पास जाकर देखा। मुरारीके कमरेमें रोशनी जल रही थी। उसे पुकारनेके लिये मैं पंजोंपर उचक कर मुँडेरेपर झुका।

बस उसी समय मेरे पैरोंको पीछेसे पकड़ कर किसीने झटकेके साथ खींच लिया। मैं मुँडेरेसे सरकता हुआ छत-पर मुँहके बल गिरा। मेरी खोपड़ी छतसे टकरायी। खैर खोपड़ी तो किसी तरह बच गयी पर छत टूटी हो तो मैं नहीं जानता!

मेरा गिरना था कि मुझे गिराने वाला फौरन मेरी पीठपर सवार हो गया। उसने अपने दोनों हाथोंसे मेरी गरदन धर दबायी जिसमें मैं उठनेकी कोशिश भी न कर सकूँ।

दो सेकेण्ड तक तो मैं घबराया हुआ पड़ा रहा। उस घबराहटकी अवस्थामें भी मुझे ऐसा जान पड़ा कि मेरा आक्रमणकारी अधिक बलवान नहीं है, क्योंकि गो मेरी

खड़े पैरोंने भी जवाब देना शुरू किया। क्या सारी रात इसी तरह खटाईमें पड़ेगी ?

चलूँ मुरारीसे राय लूँ। उससे यही पूछूँगा कि अगर तुम्हारी स्त्री अपना कमरा भीतरसे बन्द करके बैठ रहे और तुम्हारे लाख सर पटकने पर भी न खोले तो तुम उसे किस प्रकार—बिना समूचे घरमें आग लगाये—बाहर निकलनेके लिये मजबूर करोगे। मुरारी दाम्पत्य जीवन की ऐसी समस्याओंको आनन-फानन हल कर लेता है।

मुरारी उस समय ठीक बग़लके मकानमें रहता था। उसकी छत मेरी छतसे सटी हुई थी। अपने घरके तिमंजिलेपर जिस कमरेमें वह रहता था वह मेरी छतके मुँडेरेसे दिखायी पड़ता था। मैंने दो एक बार अपनी छत पर खड़े होकर उससे बातें की थीं। आज भी वहींसे बातें करूँगा।

मैं अपनी छतपर चढ़ गया। गुलाबी जाड़ा पड़ने लगा था। चैतकी चाँदनी रात अब भींग चली थी रजनीका सम्मोहक स्वरुप आँखोंके सामने निखर कर खड़ा था। चाँदनी एक शुभ्र-वसना सुन्दरीकी तरह छतपर विहार कर रही थी।

मैंने मुँडेरेके पास जाकर देखा। मुरारीके कमरेमें रोशनी जल रही थी। उसे पुकारनेके लिये मैं पंजोंपर उचक कर मुँडेरेपर झुका।

बस उसी समय मेरे पैरोंको पीछेसे पकड़ कर किसीने झटकेके साथ खींच लिया। मैं मुँडेरेसे सरकता हुआ छत-पर मुँहके बल गिरा। मेरी खोपड़ी छतसे टकरायी। ख़ैर खोपड़ी तो किसी तरह बच गयी पर छत टूटी हो तो मैं नहीं जानता!

मेरा गिरना था कि मुझे गिराने वाला फ़ौरन मेरी पीठपर सवार हो गया। उसने अपने दोनों हाथोंसे मेरी गरदन धर दबायी जिसमें मैं उठनेकी कोशिश भी न कर सकूँ।

दो सेकेण्ड तक तो मैं घबराया हुआ पड़ा रहा। उस घबराहटकी अवस्थामें भी मुझे ऐसा जान पड़ा कि मेरा आक्रमणकारी अधिक बलवान नहीं है, क्योंकि गो मेरी

गरदन वह अपनी पूरी शक्तिसे पकड़े हुए था तब भी मुझे कोई खास तकलीफ़ नहीं हो रही थी। मेरी पीठपर उसके शरीरका पूरा बोझ होते हुए भी कुछ नहींके बराबर था।

इस प्रतीतिने मेरी घबराहट बहुत कम कर दी। तब मेरे ध्यानमें यह बात भी आयी कि मुझे गिरानेवालेका शरीर केवल हलका ही नहीं था, साथही फूलसा मुलायम और चिकना भी था। कम-से-कम मेरी पीठ जिसपर वह बिना ज़ीनके सवार था यही गवाही दे रही थी।

मेरी हिम्मत अब बहुत बढ़ गयी। घबराहटका नाम न था। मैंने अपना एक हाथ ऊपर उठाया कि उसे पकड़ पाऊँ तो नीचे खींच लाऊँ। पर यह क्या? मेरे हाथकी पकड़में जो चीज़ आयी वह रेशमके फ़ीतेसे गुँधी हुई दो फ़ीट लम्बी चोटी थी।

अब मेरे आश्चर्य्यका ठिकाना न रहा। मैं उछल कर उठ बैठा। मेरी पीठका सवार लुढ़क कर छतपर गिरा। मैंने देखा कि वह और कोई नहीं, खुद मेरी स्त्री थी।

अभी तो अपने कमरेमें मुझसे रूठी हुई पड़ी थी और अभी मुझे दे मारनेके लिये छतपर कैसे आ गयी? वह बहुत डरी और घबरायी सी जान पड़ती थी।

मैंने पूछा—'आख़िर मेरे साथ इतनी पहलवानी क्यों ख़र्च की गयी ?'

उसने उत्तर न दिया। मैंने देखा कि वह आकाशकी ओर हाथ जोड़े बैठी है। मैंने पूछा—'यह क्या कर रही हो ?'

उसने कहा—'ईश्वरको धन्यवाद दे रही हूँ।

'क्यों ?'

'एक सेकेंडकी देर होती तो आज मेरा संसार उजड़ जाता। ईश्वर मुझे ऐन वक़्त पर यहाँ बुला लाया।'

'ऐन वक़्त पर ?'

'मैं नहीं जानती थी कि आप मुझे इतना प्यार करते हैं। ज़रा सा रूठ गयी तो आप छतसे कूद कर प्राण देने लगे। मुँडेरे पर लटक कर आपने पैर उचकाया था कि मैंने पीछेसे पैर खींच लिये। जिस समय आप छत पर आने लगे उसी समय मुझे शुबहा हुआ। भगवानने मुझे बुद्धि दी कि मैं आपके पीछे-पीछे छत पर आयी।'

भगवानने मुझे भी उस समय बुद्धि दी कि मैंने उसके भ्रमको दूर करनेकी कोशिश नहीं की। अपना काम बना, चाहे किसी तरहसे। मुझे क्या पड़ी थी कि सचाईके फेरमें फँस कर बना काम बिगाड़ता।

मैंने पूछा—'यहाँ तक तो मैं समझ गया कि मुझे छत पर दे पटकना बहुत जरूरी था पर बादमें मेरी पीठ पर सवार होकर मेरी गरदन दबोचनेसे क्या हासिल था ?'

'मुझे डर था कि आप उठ पायेंगे तो फिर छतसे कूदनेकी कोशिश करेंगे।'

मैं चुप रहा, पर मेरा मन हँस रहा था। मेरी चाह भरी आँखें उस अलौकिक रूप-छटा पर मँडराने लगीं। कैसी मोहिनी मूरत थी ! यह लोच और यह लुनाई तो कल्पनाके जगतमें भी अलभ्य ही हैं।

दो ही तो आँखें, उनसे क्या क्या देखूँ ? मद और मदिरासे भरी उन आँखोंको देखूँ ? या कुन्दन और कुन्द-कलीसे चमकते उन दाँतोंको ? या उन गोरे गरबीले गालों को ही बस देखा करूँ ? या उस चोटीको, जो भीम बन कर उसकी कमर पर लटक रही थी और मुझ हाड़-मांसके आदमीको मोमका पुतला बना रही थी ?

उसने कहा—'प्यारे ! आज तो आप मुझे अनाथ कर चुके थे।'

हम दोनोंके बीचका फ़ासला अब न जाने कैसे बहुत कम हो गया था। सच तो यह है कि मैंने इस समय

अपनेको उससे सट कर बैठा पाया। उसके नन्हे नन्हे हाथोंको अपने हाथोंमें क़ैद करता हुआ मैंने कहा—'ऐसी चाँदनी रातमें तुम्हें छत पर न रहना चाहिये।'

'क्यों ?'

'एक छत पर दो चाँदका होना ठीक नहीं। चलो नीचे चला जाय।'

उसने हंस कर पूछा—'आप तो बड़े बलवान हैं न ?'

'इसमें भी कुछ पूछना है। रोज़ दो सौ हाथ मुगदर फेरता हूँ। लेकिन क्यों पूछती हो ?'

'इसलिये कि मुझसे तो नीचे चला नहीं जायगा, आपको बल हो उठा ले चलिये। मेरा तो सारा शरीर काँप रहा है। न जाने उस समय कहाँसे इतना बल आगया था कि आपको मुँडेरसे नीचे गिरा सकी।'

वह सचमुच काँप रही थी। अभी तक मैंने ध्यानसे देखा नहीं था। मैं उठ खड़ा हुआ। झुककर उसे मैंने अपनी गोदमें समेट लिया और ले चला।

क्या हलकी-सी फुलकी-सी चीज़ थी। ऐसा मीठा

बोझ ढोनेको मिले तो मैं जिन्दगी भर मजदूरी करके अपना पेट पाल लूं।

सीढ़ी उतरते समय उसने कहा—'मैं आपसे बहुत रूठा करती हूँ। एक बार मार बैठिये तो मेरी आदत छूट जाय।'

'तुम्हें मारनेके लिये फूलोंकी छड़ी बनवानी पड़ेगी।'

'अच्छा कभी-कभी कान ही पकड़ लिया करिये।'

'लो, आजही पकड़ता हूँ, लेकिन नाराज़ मत होना।'

वह नाराज़ नहीं हुई। उसने मुसकरा कर कहा—'मैंने तो कान पकड़नेके लिये कहा था, आप गाल क्यों पकड़ते हैं?'

रचना निकेत

द्वारा

शीघ्र प्रकाशित होनेवाले ग्रंथ

१. आधुनिक राजनीतिका क.ख.ग. ले०—गुप्त, झा और सिंह
२. विवाह—क्या, क्यों और कैसे ? ले०—लक्ष्मीकान्त झा
३. मन मयूर ले०—अन्नपूर्णानन्द
४. यूरोपके भाग्य विधाता ले०—रघुनाथसिंह, इत्यादि
५. आधुनिक समस्याओंका क.ख.ग. ले०—बाबूराव विष्णु पराड़कर
६. अग्निकण ले०—रघुनाथसिंह
७. आधुनिक विज्ञानका क.ख.ग. ले०—ज्योतिर्भूषण गुप्त, इत्यादि